श्री द्वादश पर्व व्याख्यान

(अनुवादक)

पूज्यपाद मुनिवर्य्य वीरपुत्र श्री आनन्द सागरजी महाराज.

(प्रकाशक)

वीरपुत्र श्री आनन्दसागर ज्ञान भण्डार.

वीर सम्वत् २४६७ विक्रम सम्वत् १९९८ सन् १९४

द्वितीया वृत्ति

॥४॥



प्रस्तावना.



प्रिय वांचकवरो !

इस अनादि प्रवाह रूप ससार चक्रमे करीब २ तमाम जीव नानाविध कष्टोंमे परिभ्रमण कर रहे हैं, उनके दुःख परिहारार्थ ज्ञानी महात्माओं ने ' धर्म ' ही एक परम साधनभूत परम पदार्थ बताया है; मगर ससार सपाटी पर बसनेवाले देहधारियों के लिये इसका उत्कर्ष आराधन सदा सर्वदा एकसा होना असाध्य नही तो कठिन तो अवश्य ही है, अतएव पूर्व पुरुषों ने पर्व दिनों का निर्माणकर धर्म कर्म का मार्ग प्रदर्शित किया है, यद्यपि जैन शासन में अनेक पर्वों का अस्तित्व है, तदपि मुख्यतः " द्वादश पर्व " पर्व सनासे सुप्रसिद्ध हैं

प्राचीन और अर्वाचीन समर्थ विद्वानोने इन पर्वों के व्याख्यान संस्कृतादि भाषा में अपनी अद्भुत लेखिनी से आलेखित किये हैं; तथापि देशकाल के अनुसार सद्बोधार्थ नूतन पद्धतिमय रचनाकी आवश्यकता तो उपस्थित होती ही रहती है–जिस तरह कि एक ग्रन्थपर अनेक आचार्यप्रवरों ने सुखावबोधार्थ अनेक टीकाएँ रची हैं; किन्तु सर्वमें परस्पर अविरोधताका स्पष्ट प्रकाश है.

बस इसही महद्धेतुको लक्ष में लेकर अनेक लोगों के आग्रह से प्रखरपंडित महामहोपाध्याय श्री क्षमाकल्याणकजी महाराजप्रभृति की संस्कृत कृतिपर से भारतीय भाषा में हमारे प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद प्रखर वक्ता गुरुवर्य्य वीरपुत्र " श्री आनन्दसागरजी " महाराज साहब ने अपनी सुन्दर शैली द्वारा सरल और मधुर शब्दों में इस " द्वादश पर्व व्याख्यान " नामक ग्रन्थ की मनोहर रचना कर जनतापर उपकार किया है.

इस में विधिवाद, चरितानुवाद और कर्मवाद से अलंकृत चातुर्मासिक प्रमुख बारह पर्वों का विवेचन स्पष्टतः प्रकाशित किया गया है, पाठकों को शान्ति पुरस्सर साद्यन्त बाँचने से यह विज्ञात हो जायगा कि पूज्य महाराजश्रीजी ने हिन्दी साहित्य की एक अनुपम सेवा करके उसमें वृद्धि की है.

इस का प्रुफ शोधन कार्य ध्यान पूर्वक करने पर भी यदि अशुद्धता रह गई हो तो वाचकगण सुधारकर पढें अन्त मे मात्र इतना ही नम्र निवेदन है कि इस ग्रन्थ को आद्योपान्त आदरपूर्वक पढकर विवेक पुरस्सर वर्त्तन करें.

इत्यलम्

प्रकाशकः—

वीरपुत्र श्री आनन्दसागर ज्ञान भण्डार



विषयानुक्रमणिका.





❀ सातवाँ पौषदशमी व्याख्यान. ❀

❀ आठवाँ मेरुत्रयोदशी व्याख्यान. ❀

नं०	विषय.	पृष्ठ.

⊛ नौवाँ होलिका व्याख्यान. ⊛

⊛ दसवाँ चैत्री पूर्णिमा व्याख्यान. ⊛

⊛ ग्यारहवाँ अक्षय तृतीय व्याख्यान ⊛

❀ बारहवाँ रोहिणी व्याख्यान. ❀

❀ पत्रपुंज प्रशस्तिका. ❀

* शुभम् *



श्री द्वादशपर्व व्याख्यान



(अनुवादक—प्रखर वक्ता मुनिवर्य वीरपुत्र श्री आनन्दसागरजी महाराज.)

* पहिला-श्री चातुर्मासिक व्याख्यान *



(मङ्गलाचरण)

शत्रुजयमडन नमी । ऋषभदेव भगवन्त ॥ परमत्यागवृत्ति सदा । नमु सन्त गुणवन्त ॥ १ ॥
इनके अतुल पसाय से । चातुर्मासिक नाम ॥ व्याख्यान सुदर रचुं । भव्यजीव विश्राम ॥ २ ॥

परमकृपालु–विश्वतारणहार–देवाधिदेव–श्रीवीतरागदेवको अनेकशः नमस्कारकर तथा परमसंयमी पूर्णत्यागी–परमोपकारी, गुरुमहाराज को पुनः २ अभिवंदन करके यह धर्मकृत्योपदर्शक "श्री चातुर्मासिक व्याख्यान" संस्कृत परसे हिन्दी भाषामें निर्माण करता हूँ–भव्यात्माओ ! प्रमादको त्यागकर इस सुन्दर व्याख्यानको आदिसे अन्त पर्यन्त सादर श्रवण करना और उसपर पूर्ण अलोचना करके कर्त्तव्य परायण बनना; जिससे मानव जीवन सफल हो.



मूल–आख्यान.

इस जगदुद्धारक जैन शासनमें आषाढ, कार्तिक और फाल्गुन; ये तीन चातुर्मास माने जाते हैं, इनमें से किसी एक के आने पर; यथा–अषाढ चातुमासिक पर्वके आने पर परस्पर सापेक्ष एवं व्यवहार

निश्चयसे भूपित अनेकान्तवाद प्रतिपादक श्रीजिनशासन को जानकर एकान्तवाद को दूर करनेके लिये आवश्यकसूत्र के फरमान मुताबिक 'शुद्ध मुद्रा–शुद्ध रूपक' लक्षणवाले चौथे के तुल्य द्रव्य भांगे–भाव लिङ्ग सयुक्त धर्म की इच्छा करनेवाले, स्याद्वादरुचि के धारक, धर्माभिलापी प्राणियों को अच्छी तरह धर्म–कार्य करना चाहिये, वस्तुस्थिति को समझानेके लिये यहाँ लिङ्ग चार विकल्प कहे गये हैं:—

(१) अशुद्ध रूपक–अशुद्ध मुद्रा (२) अशुद्धरूपक–शुद्धमुद्रा-
(३) शुद्धरूपक–अशुद्धमुद्रा (४) शुद्धरूपक–शुद्धमुद्रा.

द्रव्ययन से 'रूपक' का अर्थ रूपैया और 'मुद्रा' का अर्थ छाप समझना; भावसे ज्ञानादिगुण और वेप जानना– पहिले भांगेमे चरक–परिव्राजकादि, दूसरेमें पासत्थे (पतिताचारी) तीसरेमें प्रत्येकबुद्ध और चौथे भांगेमें शुद्ध साधुजन, इन चारोमेंसे चौथा विकल्प ग्रहण करने योग्य है. अब सामान्यतः श्रावकों के कितनेक कर्त्तव्य दिखलाते हैं:—

श्रावकों के सामान्य कर्त्तव्य.

दुरन्त ऐसे अनन्त भव भ्रमणसे भीरु जैन मार्गानुसारी श्रावकों को बहु सावद्य-पापयुक्त व्यापार त्याग करना चाहिये, बहुत जीवों की उत्पत्ति और विनाश की संभावना होनेसे विशेषकर फाल्गुनादि महिनों में तिलादि धान्य न रखना चाहिये तथा केरी वगैरः के आचार जिनमें कि जीवोत्पति हो चुकी हो उन्हे त्याग देना चाहिये; इसही प्रकार महुड़े, बिल्ले आदि के फल तथा अरणी, शाग वगैरः के जन्तु मिश्रित पुष्पों को छोड़ देना चाहिये, बहुतेरे महीन २ त्रस जीव मिश्रित होने से वर्षाकाल में तन्दुलिया आदि की भाजी न खाना चाहिये- योगशास्त्र में सूरिसम्राट् श्रीहेमचन्द्राचार्य महाराज ने यह फरमाया है कि गुजरात वगैरः देशों के महाजन लोग फागुन चौमासे से लेकर कार्तिक चौमासे पर्यन्त प्रायः पत्रशाक नहीं खाते हैं- ढीले होगये हों ऐसे अत्यन्त पके हुवे चलितरस वाले आम-ककड़ी वगैरा फलों को वर्जना

चाहिये तथा ऐसे फल भी छोडदेना चाहिये कि जिनमे छिद्र होगये हों, एव जो कच्चे हों और जिनके अन्दर जीवों की सद्भावना हो; इसही तरह अज्ञातफल वगैरः समस्त अभक्ष्य वस्तुओं का परित्याग कर देना चाहिये कहा है.—

आज्ञातक फलमशोधितपत्रशाक । पूगीफलानि सकलानि च हट्टचूर्णम् ॥
मालिन्यसर्पिरपरीक्षकमानुषाणा-मेते भवन्ति नितरां किल मांसदोषाः ॥ १ ॥

भावार्थ—अपरीक्षक मनुष्यों को अजाने फल, विनाशोधी पानवाली शाक, आखी सुपारी, दुकान का आटा और गधा घी, ये सब वस्तुएँ निश्चयकर मांसके समान दोषवाली होती हैं

सत्पुरुषों को चाहिये कि ग्रिष्मकाल में जो वस्तुएँ शीघ्र विनाश हो जाती हैं, उन्हें त्यागकर सर्वदा निर्वंद्य ही सेवन करें. अब इस पर्व में करने योग्य श्रावकों के विशेष कर्तव्य दिखलाते हैं:—





श्रावकों के विशेष कर्त्तव्य

सामायिकावश्यक-पौषधानि । देवार्चन-स्नात्र-विलेपनानि ॥
ब्रह्मक्रिया-दान-तपोमुखानि । भव्याश्चतुर्मासिकमंडनानि ॥ १ ॥

भावार्थ—अहो भव्यात्माओ ! सामायिक, आवश्यक, पौषध, प्रभुपूजा, स्नात्र, विलेपन, ब्रह्मचर्य, दान, तप, इत्यादि; ये सब चातुर्मासिक पर्व के अलङ्कार हैं; अतएव भव्य लोगों को अवश्य धारण करना चाहिये.

यद्यपि चातुर्मास तीन हैं, तथापि जिस समय जिसकी उपस्थिति हो उसका नाम ग्रहण करके उसकी व्याख्या करने में कोई दोष नहीं है– इस पर्व में कोई सामायिक, कोई प्रतिक्रमण तो कोई पौषध वग़ैरः करें; गरज़ की जिसकी जो भावना हो वह सानन्द कर सकता है, इसमें कोई विरोध नहीं.

अब पहिले पहल तिथियों का अवलोकन करते हैं– तिथियाँ तीन प्रकार की होती हैं, तथा हि– 'चउद्दसट्ठ–मुद्दिट्ठ–पुणमासिणीत्ति" यह सूत्रकृताङ्ग–भगवती वगैरः सूत्रों का फरमान है. एक महिने मे दो चौदस, दो अष्टमी, पूर्णिमा और अमावास्या, ये छ चारित्र तिथियाँ कही जाती हैं, इनमें चारित्र की आराधना करनी चाहिये 'उद्दिष्ट' शब्द से जिनकल्याणक और पर्युषण पर्व की तिथियो का ग्रहण होता है, ऐसा 'श्रीशीलांगाचार्यादि' गीतार्थपुरुषों ने स्वीकारा है बीज, पचमी और एकादशी, ये ज्ञान तिथियाँ बोली जाती हैं, इनमे ज्ञान का आराधन करना उचित है. बाकी सर्व दर्शन–तिथियाँ हैं, इनमें दर्शन पदकी आचरणा करनी चाहिये. इसके अलावा देवपूजा, गुरुभक्ति, शास्त्रश्रवण, तीर्थयात्रा, जिनकल्याणक भूमि की स्पर्शनादि धर्म क्रियाओं करके सम्यग्दृष्टि जीवों को सम्यक्त्व निर्मल करना चाहिये, आवश्यक-निर्युक्ति का कथन है किः—

जम्मं दिक्खा नाणं । तित्थयराणं महाणुभावाणं ॥ जत्थ य कयनिव्वाणं । अगाड दसणं होइ ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस जगह महानुभाव-तीर्थंकरो के जन्म, दीक्षा, कैवल्य और निर्वाण हुवे हो, उस भूमि को स्पर्शने से दर्शन (समकित-श्रद्धा) सुदृढ होजाता है.



सामायिक का स्वरूप.

रागद्वेष रहित जीव को यानी समभावी आत्मा को ज्ञानादि का लाभ हो जिससे वह प्रशमसुखरूप समायः को 'सामायिक' कहते हैं; मन—वचन और काया की चेष्टाओं से रहित होकर मुहूर्त्त (४८ मिनिट) पर्यन्त तमाम वस्तुओं पर समान भाव रखना. यथा हिः—

निंदा पसंसासु समो । समीयमाणावमाणकारीसु ॥ समसयणपरियणमणो । सामाइसंगओ जीवो ॥ १ ॥
जो समो सव्वभूएसु । तसेसु थावरेसु य ॥ तस्स सामाइयं होइ । इमं केवलीभासियं ॥ २ ॥

भावार्थ—सामायिक सहित जीव निन्दा–प्रशसा मे समानता रक्खे, आदर–अनादर करनेवाले पर समदृष्टि रक्खे और स्वजन परजनपर समभाव रक्खे १ केवली भगवान ने यह फरमाया है कि जो प्राणी तमाम त्रस–थावर जीवों पर समान भाव रक्खे उसकी सामायिक यथार्थ कही जाती है २

सामायिक में रहा हुवा श्रावक गृहस्थ होने पर भी साधु तुल्य है देखिये—

सामइयमि उ कए। समणो इव सावओ हवइ जम्हा ॥ एएण कारणेणं। वहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ १ ॥

भावार्थ—सामायिक के करने से श्रावक साधु समान होता है, इस कारण अनेक वार सामायिक करनी चाहिये

अतएव सामायिक मे रहे हुवे श्रावक को तीर्थंकर देव की स्नात्र–पूजादि का अधिकार नहीं है; सवव कि सामायिकरूप भाव स्तवना के प्राप्त होने पर द्रव्यस्तव करना सघटित नहीं है महा पुरुषोंने सामायिक की प्राप्ति दुर्लभ वताई है—

सामाइयसामग्गिं। देवावि चिंतंति हियमज्झंमि ॥ जइ होइ मुहुत्तमेगं। तो अम्ह देवत्तण सहलं ॥ १ ॥

भावार्थ—देवता लोग भी अपने हृदय में यह विचार करते हैं कि यदि एक मुहूर्त्त मात्र हमें सामायिक की सामग्री मिले तो हमारा देवपन सफल होजाय.

सामायिक के करने वाले श्रद्धालु पुरुष दो प्रकार के होते हैं– एक ऋद्धिमन्त दूसरे ऋद्धिरहित; इनमें जो ऋद्धि विनाके लोग हैं वे तो मुनिजनों के पास, प्रभुमंदिर में, पौषधशाला में, अपने घर पर अथवा कोई भी निर्विघ्न स्थान पर 'सामायिक' करें, और जो राजादि ऋद्धिमन्त पुरुष हैं वे आडम्बर से उपाश्रय आकर सामायिक करें; कारण कि इस प्रकार करने से लोगों में जिनशासन की महति प्रभावना होती है. अब सामायिक के आठ नाम प्रकाशित करते हैं—

सामाइयं समइयं । समवाओ समास संखेओ ॥ अणवज्जं च परिण्णा । पच्चक्खाणे य ते अट्ठं ॥ १ ॥

भावार्थ—(१) सामायिक–समभाव (२) समयिक–समग्र जीवों पर दयापूर्वक वर्तन (३) सम्यग्वाद–राग, द्वेष, भयादि रहित सत्य कथन (४) समास–थोडे अक्षरों में कर्मविनाशक तत्त्वावबोध

(५) संक्षेप–थोड़े अक्षरों में महान् अर्थवाली द्वादशाङ्गी (६) अनवद्य–पापरहित आचरणा (७) परिज्ञा पापके परिहार से समस्त वस्तुओं का बोध (८) प्रत्याख्यान–त्याग करने योग्य वस्तुओं का त्याग, इन अष्ट प्रकार की सामायिकों पर क्रमशः आठ दृष्टान्त दिखलाते हैं—

(सामायिक पर)

❀ दमदन्त राजर्षि का दृष्टान्त ❀

हस्तिशीर्ष नगर में दमदन्त राजा राज्य करता था, एक समय हस्तिनापुर के स्वामी पांडव और कौरवों के साथ सीमा सम्बधि विवाद हो गया; कितनेक दिन बीतने पर एक वख्त दमदन्त भूपति जरासिंधु भूपेन्द्र की सेवा करने के लिये गया हुवा था, उस समय बराबर मौका देखकर कौरव और पाडवों ने उसका देश लूँटा, यह समाचार सुनते ही कोपाक्रान्त होकर दमदन्त नरेन्द्र अपनी सेना सहित हस्तिनापुर पर चढ़ आया, परस्पर महायुद्ध हुवा, दैववशात् पांडव और कौरवों का पराजय हुवा और दमदन्त प्रजापति विजय करके अपने स्थान पर सानन्द वापिस आगया.

एक वक्त का जिक्र है कि दमदन्त महाराजा संध्या समय अपने महल के गोखमें बैठा हुवा पंचवर्णी बादलों को देख रहा था, उनकी सुंदरता की उत्पत्ति और विनाश को देख कर संसार की अनित्यता का उसको भान होगया, इससे वैराग्यवश होकर शीघ्र ही प्रत्येक बुद्धरूप दीक्षा अंगीकार करली—मुनि-पद के नियमानुसार ग्रामानुग्राम विहार करने लगे; एकदा हस्तिनापुर के दरवाज़े बाहार आकर काउसग्ग ध्यान में खड़े हैं और, उस समय राज–बगीचे में जाते हुवे पांडव लोग दमदन्त राजर्षि को देखते ही तुरन्त घोड़े से नीचे उतरे और विधिपूर्वक वंदन कर दोनों प्रकार के बल (कायिक और आत्मिक) की स्तुति कर आगे चले, पीछे से कौरव लोग आये उनने दमदन्त राजर्षि को पहिचान कर वैर–विरोध के खातर वृद्ध दुर्योधन ने कुत्सित शब्दों से तिरस्कार कर उनकी तरफ बीजोरे का फल फेंका, 'यथा राजा तथा प्रजा' इस न्याय के अनुसार पीछेवाले सब लोगों ने काष्ट–पाषाण वगैरः उनके नजीक फेंके; जिससे मुनि के चारों ओर एक उँचा चोंतरासा बन गया— पांडवलोग जब इस ही रास्ते से वापिस निकले तो मुनिके स्थान पर एक बड़ा चबूतरा देखा, लोगोंद्वारा कौरवों की दुष्प्रवृत्ति समझ कर उस चोंतरे को साफ

किया और राजर्षि को अभिवंदन कर अपने स्थान पर चले गये; कहने का तात्पर्य यह है कि पांडवो के सन्मान पर और कौरवों के अपमान पर, अर्थात् दोनो पर महर्षिने समान भाव रक्खे– इसही तरह भव्यात्माओं को भी समभाव रखना चाहिये

(समयिक पर)

❀ मेतार्य मुनि का चरित्र ❀

राजगृह नगरी में पूर्वकृत पापके उदय से मेतार्य मुनि का जन्म चांडाल कुल में हुवा था, उसही नगरी में मृतवत्सा (जिसके मर हुवे सतान हों) धनदत्त सेठ की भार्या के साथ चंडालनी ने लोभाभिभूत होकर जन्मते ही अपने सन्तान का रदोबदल किया, अतः मेतार्यमुनि सेठ के घर पर पोषण पाकर युवान अवस्था में पहुँचे; पूर्वभव के मित्ररूप देव की सायता से नगर के श्रेष्ठियों की आठ कन्याओं के साथ और एक राजा श्रेणिक की कुमारीका के साथ विवाह हुवा, मोज–शोखसे ससारी सुखों का अनुभव करने लगे, बारह वर्ष बाद देवमित्र के वचन से महावीर प्रभु के पास दीक्षा अगीकार की

क्रमशः विचरते २ एक वख्त राजगृही नगरी में एक सोनार के घर पर गौचरी लेने पधारे, सुवर्णकार भिक्षा–सामग्री लेने को घरमें गया और मुनिश्री हाट पर खड़े रहे, उस समय एक क्रौंच पक्षी आया और महाराजा श्रेणिक के पूजा निमित्त बनाये हुवे सोने के १०८ जव भक्षण कर वहाँ से उड़कर एक भींत पर जा बैठा; जब कि सोनार शुद्ध भिक्षा लेकर बहार आया तो वहाँ सुवर्ण–यव नहीं देखे; 'निश्चय यह साधु ही चौर है;' ऐसा समझ कर मुनि को जवों के विषय में पूछा ? "क्रौंच पक्षी खागया है, यह महात्मा को मालुम था; मगर यह कहने से पक्षी मारा जायगा" ऐसा समझ कर उसके बचाव के लिये अपनी जान को जोखम में डाल कर महान्–दया के सागर मौन रहे ! तब अत्यन्त रुष्ट होकर सुनार ने मुनिवर को नीली छाल से जकड़ कर बांधे कि जिससे आखों के डोले तत्काल बहार निकल पड़े, इस समय वेदना का कुछ पार न रहा, अन्त में समता भाव के प्रताप से 'अन्तगड़–केवली' हुवे– कहने का भावार्थ यह है कि महर्षि श्री मेतार्य मुनि ने जीवदया के खातिर अपना प्राण–बलिदान किया; इसही प्रकार मुमुक्षों को प्राणों की परवाह न कर जीवदया पालना चाहिये.

(सत्यवाद पर)

❀ कालिकाचार्य का वृत्तान्त. ❀

तुरमणी नगरी के राजा जितशत्रु को छल से पींजरे में डाल कर 'दत्त' नाम का पिरोहित स्वय राजा बन कर राज्य चलाने लगा; एक समय इस राजा के मामा श्री कालिकाचार्य महाराज वहाँ पधारे है, माता के अत्याग्रह से दत्त राजा सूरीश्वरजी के पास गया, वहां पर जाकर धर्म की इर्षा करता हुवा अत्यन्त उन्मत्त होकर गुरुमहाराज से सक्रोध पूछने लगा—यज्ञ का फल क्या है? शान्ति के सागर गुरुदेव ने धैर्य धारण कर स्पष्टत फरमाया "यज्ञका फल हिंसा और हिंसा का फल नरक है" राजा ने पूछा—इसमें क्या प्रमाण है? आचार्यश्री ने फरमाया "आज से सातवें दिन तूं कुत्तों से चुटाया जाकर कुंभी में पचेगा" दत्तने पूछा— इसमें भी क्या सिबूत है? मुनिपुङ्गव ने फरमाया "उसही दिन अचानक तेरे मुख में विष्टा पड़ेगी" यह सुन कर राजा के क्रोध की सीमा न रही, तब धधकते हृदय पूछा— तुम कैसे मरोगे? गुरुमहाराज ने तुरन्त ही निडर उत्तर दिया "हमारा समाधि—मरण होगा और मर कर स्वर्गलोक में

जाएंगे" इस समय दत्तने अधिक बोलना मुनासिब न समझा; मगर 'मुनि का वचन मिथ्या कर उन्हें कड़ी शिक्षा करने का निश्चय किया' दत्त राजा मगरूरता पूर्वक वहाँ से उठ कर एकान्त स्थान में सावधानता से रह कर आठवें दिन की राह देखने लगा और आचार्यश्री के आसपास मजबूत पहेरा बैठा दिया.

मतिभ्रमणा से आज सातवें दिन को आठवाँ दिन मान कर सूरीश्वरजी के प्राणों का बलिदान लेने सम्बंधि अनेक तरङ्गों के मैदान में खेलता हुवा घोड़े पर सवार होकर दत्त राजा आचार्य महाराज के पास हँसते मुख जारहा है 'विधिरहो बलवानिति मे मतिः' इस महावाक्य के अनुसार यहाँ एक विलक्षण बनाव बना "इसही दिन प्रातःकाल होते ही एक माली पुष्पों का टोकरा लेकर नगर में आरहा था, रास्ते में बड़े ज़ोर से पखाने की हाज़त होने से बीच में ही मुख्य रास्ते पर टट्टी जाकर उस पर गहरे फूल डाल दिये" इसही रास्ते से दत्त की सवारी निकली, उसके घोड़े का टॉप ठीक फूलों के ढेर पर पडा कि वहाँ से विष्टा उछल कर राजा के मुख में जागिरी; यह चमत्कृत बनाव देख कर दत्त को सातवें दिन का भान होगया; अतः निराश होकर वहीं से वापिस लौट गया.

इधर दत्तके बहुतेरे अनर्थ सहन करने के बाद मंत्रियों ने आज जितशत्रु राजा को पींजरे से बहार निकालकर राज-सिंहासन पर स्थापन किया और दुष्ट दत्तको बंधनो से बांधकर नृपेन्द्र के हजुर में हाज़िर किया ; राजा ने उस कुंभी में डलवाकर नीचे से अग्नि प्रज्वलित कराई, पश्चात् कुत्तों को उसपर छोडे, उनने उसके शरीर की भारी कदर्थना की; अन्त में वह मरकर नरक में गया, इस वख्त आचार्य महाराज की बहुत प्रशंसा होने लगी– कहने का परमार्थ यह है कि कालिकाचार्य महाराज के माफ़िक सुज्ञपुरुषों को दृढ़ता पूर्वक सत्य बोलना चाहिये

(समास पर)

❀ चिलाती पुत्र का दृष्टान्त. ❀

राजगृह नगर में धनदत्त नामका एक वेपारी रहता था, उसके चार पुत्र, एक सुसमा नाम की पुत्री और चिलाती पुत्र नाम का एक दास था, एक वख्त सेठने अपनी कन्या के साथ चिलाती को दुराचार करते हुवे जान कर उस को घर से निकाल दिया, वह किसी एक चौरों की टोली में जाकर मिल

गया, अपना अपमान का बदला लेने के खातिर एकदा वह चिलातीपुत्र कितनेक चौरों के साथ सेठके घर में आघुसा, चौर लोगों ने कितनाक धन चुराया और चिलाती सुसमा कन्या को लेकर वहाँ से भगा; यह बात मालुम होते ही चारों पुत्रों के साथ सेठने उसके पीछे धावा किया, दुष्ट चौर ने उनको अतिसमीप आया हुवा जानकर सुसमा का शिरोच्छेद करडाला और धड़ रास्ते में फेंक दिया; इस तरह एक हाथ में रुधिर से खरड़ी तलवार और दूसरे हाथ में मस्तक लेकर एक पर्वतपर जाचढ़ा, इधर सेठ इस अवस्था को देख हताश होकर पीछा लौट गया.

उस समय उस पर्वत के ऊपर एक महामुनि ध्यान लगाकर खड़े हुवे थे, क्रूर चिलाती ने उनसे जाकर कहा— रे मुंड ! धर्म सुना ! नहीं तो इस खड्ग से तेरा भी मस्तक छेद डालूंगा, साधु महाराज ने व्यर्थ मरना अनुचित समझ कर तथा उसको पापबंधन से मुक्त रखने के हेतु काउसग्ग पालकर आकाश में उड़ गये और चलते समय तीन शब्द कहते गये—(१) उपशम (२) विवेक (३) संवर; सुनकर चिलातीपुत्र ने इनका अच्छी तरह अर्थ विचारा तो मालुम हुवा कि इनमें से एक भी गुण मेरे में नहीं है;

ऐसा निर्णय कर इनको प्राप्त करने के हेतु शान्तपरिमाणी होकर रुधिरलिप्त-खड्ग को त्याग किया और मुनि के स्थानपर ही काउसग्ग ध्यान में खडा रहा, खून के गंध से असंख्य चिटियों ने आ-आकर उसके शरीर में बहुत से छिद्र किये; तदपि वह अपने ध्यान से लेशमात्र न चला और अखीर तीन दिन तक महती वेदना सहन कर स्वर्ग में गया- कहने का मतलब यह है कि जिस तरह थोडे में अधिक सार चिलाती पुत्र ने प्राप्त किया, उसही तरह भाविकों को दीर्घविचारी होकर तत्त्वावबोध ग्रहण करना चाहिये.

(संक्षेप पर.)

❀ चार पडितों का किस्सा ❀

वसन्तपुर नगर के राजा जितशत्रु एकदा शास्त्र श्रवण की इच्छा हुई, तव चार पंडितो ने एक २ लाख श्लोक प्रमाण का एक २ ग्रंथ वनाया (१) वैद्यक शास्त्र (२) धर्म शास्त्र (३) नीति शास्त्र (४) काम शास्त्र, इस प्रकार चार ग्रन्थ तैयार कर राजा के समीप गये और श्रवण करने की निवेदना की,

ग्रंथ की बहुलता को जानकर राजा ने कहा– इतने विशाल ग्रन्थ सुनने का मेरे पास समय नहीं है; वास्ते तुम अल्प शब्दों में इनका सार कह सुनाओ; तब चारों विद्वानों ने मिलकर अपने २ ग्रंथ का सारभूत एक २ चरण बनाकर क्रमशः नृपेन्द्र को इस प्रकार सुनाया—

जीर्णे भोजनमात्रेयः । कपिलः प्राणिनां दया ॥ बृहस्पतिरविश्वासः । पंचालः स्त्रीषु मार्दवम् ॥ १ ॥

भावार्थ—आत्रेय नामके विद्वान ने कहा– पहिले का भोजन पचजाने पर नया भोजन करना चाहिये; यह वैद्यक शास्त्र का परमार्थ है. कपिल पंडित बोला– सर्व जीवों पर दया रखना, यह धर्म शास्त्र का तत्व है. बृहस्पति कोविद् ने कथन किया– कोई विश्वास न करना चाहिये, यह नीति शास्त्र का सार है. पंचाल नामक शास्त्री बोला स्त्रियों के साथ कोमल व्यवहार करना युक्त है, मगर उनका अन्त कभी नहीं लेना; यह काम शास्त्र का रहस्य है. यह सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुवा और उन चारों को काफी पारितोषिक दिया– कहने का तत्वांश यह है कि इन ग्रन्थों के सारांश की तरह थोड़े अक्षरों से अधिक अर्थवाली द्वादशाङ्गी होती है; अतः श्रोता सज्जनों को भी सार ग्रहण करना चाहिये.

(अनवद्य पर)

धर्मरुचि अणगार का आख्यान

धर्मघोषाचार्य के शिष्य धर्मरुचि नाम के साधु किसी एक समय गौचरी के लिये घूमते २ नागश्री (रोहिणी) नाम की ब्राह्मणी के घर में प्रवेश हुवे, उसने मीठे की भ्रान्ति से कडुवे तुम्बे की तरकारी अपने कुटुम्ब के लिये वना रक्खी थी; मगर पीछे से मालुम हो जाने पर उसने दुष्ट बुद्धिसे वह शाक उन मुनिराज को वहरा दिया, क्षमा के सागर मुनिश्री आहर लेकर गुरु महाराज के पास आये, शाक का आपूरित पात्र देखते ही महात्माश्रीने पूछा—हे आर्य ! आज तुझको इस कदर पूर्णपात्र भरदेने वाला कौन भक्तजन मिला ? मुनिने कहा—कृपानिधे ! अमुक व्यक्ति ने उग्र भाव से वहराया है; गुरुदेव ने उस की गंध से जानकर फरमाया—हे महानुभाव ! यह शाक हलाल जहर है, वास्ते किसी निरवद्य भूमि पर इस परठ दो, तव दया के सागर धर्मरुचि अणगार आज्ञानुसार गये और जब कि परठना शुरु किया तो केवल एक विन्दु के पडने पर ही असंख्य कीडियें आगईं तथा उस की दुर्गंध मात्र से मरगईं, इस

प्रकार की दयाजनक स्थिति देखकर पापभीरु मुनिश्रेष्ठने करुणा के खातर अपने ही पेटमें वह शाक डाल दिया; अर्थात् स्वयं भक्षण कर गये; इस वख्त समस्त जीवों के साथ क्षमत-क्षामणा कर स्वर्गवास में (सर्वार्थसिद्ध में) सिधाये—कहने का भावार्थ यह है कि जिस तरह इन महामुनि ने जीवदया के लिये अपने प्राण अर्पण किये; उस ही तरह प्रत्येक दयालु को परहित के लिये आत्म अर्पण करना चाहिये.

(परिक्षा पर)

इलाचीपुत्र का उपाख्यान

इला नगर के अन्दर धनदत्त नाम का एक सेठ रहता था, उसके इलादेवी ललना से उत्पन्न 'इलाची' नाम का पुत्र था, एक वख्त विदेशी नट नाच करने को इस गांव में आये, उनमें अत्यन्त रूप—लावण्य युक्ता एक नट—पुत्री थी, उसको देखकर श्रेष्ठी पुत्र पूर्वभवके स्नेहवश उस पर गाढ आसक्त हो गया, वहाँ से घर पर आकर अनेक डौल बताने के पश्चात् मात—पिता को कहा कि तुम उस नटपुत्री के साथ मेरा

विवाह करदो अन्यथा में मरण–शरण हो जाऊँगा; मगर अन्य कन्या के साथ सादी न करूँगा, यह सुन मात–पिता ने अनेक विध समझाया, लेकिन वह किसी तरह भी न समझ सका, अखीर लाचार हो सेठ नटपुत्री की मांगणी करने को सज–धजकर नट के मुकाम पर गया.

जाते ही सेठ दबदबे से बोला– हे नट ! क्या तुझे मालूम है कि में कौन हूँ ? नटने निडरता से तुरन्त उत्तर दिया जी हां ! मैं जानता हूं कि तुम लक्ष्मी के गुलाम हो, सुनते ही सेठ की उद्धताई एकदम शान्त हो गई, तब बडी मृदुता से श्रेष्ठी बोला– हे भाई नटराज ! तूँ अपनी पुत्री का मेरे पुत्र के साथ विवाह कर दे, यह मेरी याचना है ! नटने कहा– यदि तुमारा लड़का मेरा धधा (नृत्यकला) सीखे और उससे द्रव्य उपार्जन कर मेरी ज्ञाति को सन्तोपे तो मैं अपनी लड़की दे सकता हूँ, सेठ निराश वदन घर पर आकर पुत्र को सर्व हकीकत कही 'कामातुराणां न भयं न लज्जा' इस नियम के अनुसार वह इलाचीपुत्र कुल–मर्यादा का त्याग कर शीघ्र ही नट मंडल में सामिल हो गया और थोड़े ही अर्से में नटकला में प्रवीण भी हो गया.

अब क्रमशः वेनातट नगर में प्राप्त होकर एक विशाल मैदान में नृत्य की समस्त सामग्री तैयार की, राजा और समग्र प्रजा को अपनी कला दिखलाने के लिये लंगोट लगाकर शीघ्र ही वंशपर चढ गया और नानाविध नाच करने लगा, इधर नीचे खड़ी हुई रति की मति को भ्रमित करनेवाली मदमस्त युवती नट कन्या तान–शान से ढोलक बजाती हुई मधुर गान गाने लगी, इस वख्त राजा की दृष्टि इस सुन्दरी पर पड़ी, बस वह सब भान भूल गया, उसकी काम–दशा जाग उठी, अतः विचारसागर में भारी तूफान मचने लगा–"यदि नाचता हुवा नट नीचे गिरकर यम–शरण होजाय तो इस रति समान नट-कनीको मेरे कब्जे करलूँ" इस तरह विचार निद्रा (तन्द्रा) में तलालीन होगया, इस वख्त नाच करके नटने राजा के पास दान की याचना की; मगर राजा के घातक विचार ने यही उत्तर दिया कि– व्यग्रचित्त होने से सम्यक्तः नाच नहीं देखा अतः दुबारा करो ! धनकी लिप्सा से नट पुनः अभिनव कलाओं को दिखा कर दान माँगने लगा; किन्तु राजा ने पुनः वही उत्तर दिया, तब नट फिर तीसरी वार ऊपर चढा, इस समय नटपुत्री बोली हे–"हे इलाचीपुत्र ! तुम नीचे उतर जाओ, राजा चाहे भले न प्रसन्न हो और

पिता चाहे स्वीकार न करे, मैं तुमको प्रेमपूर्वक पतिदेव तरीके स्वीकारुंगी" नट कन्या इस वक्त राजा के अन्तर्भाव समझ गई थी.

इस अवसर में किसी एक श्रीमन्त सेठ के घर पर एक मुनिराज आहार लेने पधारे हैं, रसोड़े में सोलह श्रृँगार को धारण की हुई यौवन मद से मदोन्मत्ता अकेली सेठानी ही थी, गुरुमहाराज के पधारते ही तत्काल उठ खडी हुई तथा विनय पूर्वक वंदन किये और मोदकों का थाल भर उन पूज्य महात्मा को वहराने लगी, वैराग्यरंग रंगित मुनिराज अपनी निर्विकार शान्तदृष्टि नीचे रखकर कहने लगे-'बस-बस' अधिक खप नहीं है, इस तरह गोचरी ग्रहण की

इस समय वंशारूढ नट की दृष्टि सेठ के मकान पर पड़ी, इस आदर्श स्वरूप को देखकर इलाची-पुत्र हृदय में विचारने लगा-"अहा! धन्य है इन महामुनि को जिसने काम-मोह पर सम्पूर्ण विजय किया है, यह एकान्त निर्जन स्थान भरजोबन को धारण करनेवाली स्वरूपवती अकेली युवती और अकेले ही मुनि; इन सर्व विकारी विषयों के उपस्थित होने पर भी मुनिवर की अप्रतीम दृढता को पुनः २ धन्य है

और धिक्कार है मेरे अधम जीवन को कि एक नीच नटवी के पीछे धर्म–कर्म से हाथ धो बैठा " बस इस शुभ भावना द्वारा उस नटने वैराग्य भुवन में प्रवेश किया और अनित्यादि भावना का उत्कर्ष चिन्तन करते हुवे लोकाऽलोक प्रकाशक 'केवलज्ञान' उसे उत्पन्न हुवा, देवताओं ने महोत्सव किया, वंश सिंहासन बन गया. इस चमत्कृत स्वरूप को देखकर राजा वगैरः प्रतिबोध को प्राप्त हुए– कथन का अभिप्राय यह है कि पाप के परिहार से समस्त वस्तुओं का परिज्ञान जिस तरह इलाची पुत्र को हुवा. उसही तरह भवभीरुओं को सम्पूर्ण त्याग कर ज्ञानवन्त बनना चाहिये.

(प्रत्याख्यान पर)

❀ तेतलीपुत्र का दृष्टान्त ❀

तेतली पुर में कनककेतु राजा राज्य करता था, उस राज्य का अतिशय लोभ होने से जन्मते ही अपने पुत्रों को मरवा डालता था; उसके 'तेतलीपुत्र' नामका एक प्रधान था, मंत्री की भार्या का नाम पोट्टिला था, पहिले वह अपने पति को अत्यन्त वल्लभा थी; मगर पीछे से कोई कारणवश अपमानिता

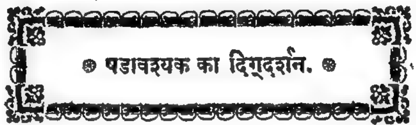
हो गई– किसी एक दिन कोई आर्या अमात्य के घर पर गोचरी के लिये पधारी हैं, आहार बहेराने के बाद पोट्टिला ने पूछा– हे महासति ! भर्त्तार को वश करने का मुझे कोई उपाय बताओ ? साध्वीजी ने कहा– महानुभावे ! तुम शान्ति से धर्म का आराधन करो, जिससे सब कुछ सिद्धि होगी, ऐसा कह कर वैराग्योपदेश दिया; यह सुन उसका हृदय संसार से उद्विग्न होकर दीक्षा लेने में कटिबद्ध हुवा, अत. अपने प्रियतम से प्रव्रज्या लेने को आज्ञा मागी ? सब तरह बातचीत होने के बाद मंत्रीराजने कहा– तूं दीक्षा शौख से ग्रहण कर, परन्तु यदि तूं स्वर्गवास में उत्पन्न हो तो मुझे अवश्य प्रतिबोध देना, पोट्टिलाने यह बात स्वीकारी और दीक्षा लेकर अन्त में समाधि पूर्वक देवपद को प्राप्त हुई

इधर मन्त्रीने राजा के दुष्ट कार्य को जानकर जन्मते ही एक राजपुत्र को अपने घरमें प्रच्छन्नपने सुरक्षित रखा, उसको लालन–पालन कर बडा करने लगा, कनककेतु नृपति के परलोक सिधाने पर अमात्य ने शीघ्र ही उस गुप्त रक्षित कनकध्वज राजपुत्र को राज्य सिंहासन पर स्थापन किया, लघुवय होने के सबब राजाने अपने परमोपकारी मन्त्रीश्वर को राजा का तमाम काम सिपुर्द किया और पूर्ण सत्ता

भी देदी, तब मंत्री रात–दिन राजकार्य में मग्न रहने लगा, यहां तक कि धर्म–कृत्य सर्वथा ताक में रख दिये– इस वख्त देवपद विराजित पोट्टिलाने प्रधान के इस उपाधिमय स्वरूप को देखकर प्रतिबोध के लिये इस प्रकार योजना की—

एक दिन उस देवने दरबार में विराजित राजा और तमाम राज कर्मचारियों के दिल पलटा दिये, इस वख्त प्रधान बन–ठनकर कचहेरी में आया, नृपेन्द्र को नमस्कार किया और समस्त दरबारियों पर दृष्टि डाली; मगर न तो राजा ने सलाम ग्रहण की और न दरबारियों ने सत्कार ही किया; इस अनादर से खेदित होकर दिवान शीघ्र ही घर पर वापिस चला गया और कुमरणी आत्मघात करने के लिये नवीन २ शस्त्रों का प्रयोग करने लगा; किन्तु देवने उसके सर्व प्रयोग निष्फल किये, मन्त्री निरुपाय शान्त होकर चुपचाप बैठगया; इस समय वह देव प्रकट होकर बोला– "अहो मंत्रीराज ! देखो इस प्रकार संसार का स्वरूप निस्सार है, कोई किसी का नहीं, सारे जगत में स्वार्थ जाल फैली हुई है; अब सावधान होजाओ" इतना कहकर देव अन्तर्ध्यान होगया. प्रधान ने इस अमोघ बोध–वचनामृत को सुनकर वह सब परिग्रह

का त्याग किया और दीक्षा लेकर अपना आत्म कल्याण किया— कहने का तत्त्वार्थ यह है कि जिस तरह तेतलीपुत्र मंत्री ने त्याग किया; उसही तरह भव्य श्रोताजनों को भी परिग्रह से मुक्त होकर सुखी घनना चाहिये

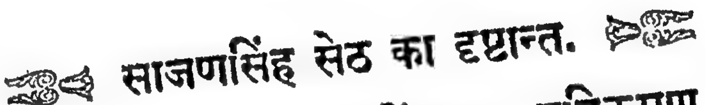


❀ षडावश्यक का दिग्दर्शन. ❀

शाम और सुबह दोनों वक्त करने योग्य अवश्य कर्त्तव्य को 'आवश्यक' प्रतिक्रमण कहते हैं. उसका फल इस प्रकार है—

आवस्सएण एएण । सावओ जइवि बहुरओ होइ ॥ दुक्खाणमंतकिरियं । काहि अचिरेण कालेण ॥ १ ॥
आवस्सअ उभयकाल । ओसहमिव जे करंति उज्जुत्ता ॥ जिणविज्जकहियविहिणा । अकम्मरोगायते हुंति॥ २ ॥

भावार्थ—श्रावक यद्यपि बहु पापयुक्त होते हैं. तदपि प्रतिक्रमण करके थोड़े ही समय में दुःख का अन्त कर देते हैं. १, जिनेन्द्र भगवान् रूप वैद्यराज के कथनानुसार उपयोगवन्त जो श्रावक दोनों समय समय औषधिरूप प्रतिक्रमण करते हैं, वे कर्मरूप रोग से मुक्त होते हैं २.–प्रतिक्रमण की कटिवद्धता पर यहां एक दृष्टान्त दिखाते हैं—



साजणसिंह सेठ का दृष्टान्त.

साजणसिंह सेठ को यह दृढ़ नियम था कि दोनों वख्त प्रतिक्रमण किये विना भोजन न करना; किसी एक वख्त पिरोजशाह बादशाहने कोइ अपराध कायम कर उसे जेलमें बन्द कर दिया, अपने नियम को कायम रखने के लिये सेठ पचास २ सुवर्ण महोरे पहेरेदार को देदेकर शान्ति पूर्वक नित्य प्रतिक्रमण करता था—एकदा कोइ परदेशी दो रत्न लेकर बादशाह के पास आया, सम्राट्ने परीक्षा के लिये श्रेष्ठी को बुलाया, सेठ ने परीक्षाकर कोइ प्रकरणवश बड़ी भारी पटुता से कहा–जहांपना! जगत में 'आप तीसरे रत्न हो' बस इस नम्र और प्रशंसावाले शब्द को सुनकर बादशाह ने उसे कारागृह से मुक्तकर उसका

खूब सन्मान किया; इस अवस्था में पहरेदार लोग भयभीत होकर महोरें वापिस देने आये; मगर सेठ ने गंभीरता से कहा–अहो भाईयों! घबराओ नहीं; धनका मूल्य ही क्या है! में अपने अमूल्य व्रत को अखण्ड रख सका हूँ यह तुमारी ही सहायता का फल है–कहने का तात्पर्य यह है कि साजण सेठ ने जिस तरह लक्ष्मी की परवाह न कर अपना नियम रक्खा; उस ही तरह धर्मार्थिओं को भी अखड नियम रखना चाहिये.

पौषध व्रत का विवेचन.

जिस से धर्म की पुष्टी हो वह 'पौषध' कहा जाता है (१) आहार (२) शरीरसुश्रुषा (३) गृहव्यापार (४) मैथुन, इन चार वस्तुओं का पौषध व्रत में परित्याग किया जाता है. पौषध व्रत का फल इस प्रकार है—

पोसही य सुहे भावे। असुहाइ खवेइ नत्थि संदेहो ॥ छिंदेइ नरयातिरियगइं। पोसह विहिअप्पमत्तेणं ॥ १ ॥

भावार्थ—यह बात निस्संदेह है कि पोसह करनेवाला अप्रमत्त रहकर जो शुभ भाव से विधिपूर्वक पौषध करे तो उस के सकल दुःख नाश हो जाते हैं और नरक तथा तिर्यंच इन दोनो गतिओं का विच्छेद हो जाता है; अर्थात् सद्गति का भाजन बन जाता है—यहाँ पर कामदेव श्रावक की कथा जानना.



प्रभु—पूजन का महात्म्य.

देवाधिदेव श्रीजिनेन्द्र देव का वासक्षेप, जल और चन्दनादि से पूजन करनी चाहिये, इस से प्रशस्त पुण्य और निर्जरा की प्राप्ति होती है; पदत्रय में सर्व प्रकार की पूजा का समावेश हो जाता है. महापुरुषों ने प्रभु पूजा का फल ' फलसार पयन्ना सूत्र में ' इस प्रकार फरमाया है—

सयं पमज्जणे पुण्णं । सहस्सं च विलेवणे ॥ सयसहस्सिया माला । अणंतं गीयवाइयं ॥ १ ॥

भावार्थ—प्रभु प्रतिमा को प्रमार्जन करने से सो गुना, विलेपन से हज़ार गुना, पुष्पमाला चडाने से लाख गुना और गीत–वाजित्र से यानी भक्ति करने से अनन्त गुना पुण्य फल मिलता है तथा भावप्रधान की अपेक्षा तत्तत् प्रमाण उपवासो के समान लाभ की प्राप्ति होती है; अतएव इस जगह पुण्यफल का अर्थ 'उपवास फल' समझना चाहिये–यहाँ पर रावण, द्रोपदी, नागकेतु वगैरा के दृष्टान्त समझना

ब्रह्मचर्यादि का आदर्श.

स्त्री संसर्ग के त्याग को 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं, गृहस्थ अपनी विवाहित स्त्री के सिवा तमाम ललनाओं का त्याग करे, 'एकनारी ब्रह्मचारी' यह महावाक्य हमेशा याद रक्खे, धर्म के महान् कार्यों से भी इस

व्रत की महत्ता विशेष अधिक है. कहा गया है कि—

जो देइ कणयकोडिं । अहवा कारेइ कणयजिणभवणं ॥ तस्स न तात्तिय पुण्णं । जत्तिय बंभव्वए धरिए ॥ १ ॥

भावार्थ—यदि कोइ पुरुष क्रोड़ सोनैये का दान करे किंवा सारा सुवर्णमय जिन मन्दिर बनवावे; परन्तु उस को उतना पुण्य नहीं होता जितना कि ब्रह्मचर्य व्रत के पालने से होता है–इस जगह सुदर्शन सेठ आदि के दृष्टान्त जानना.



किसी अतिथी को अन्नादि देना ' दान ' कहा जाता है, शास्त्रकार महाराज ने (१) अभय (२) सुपात्र (३) अनुकम्पा (४) उचित (५) कीर्ति; ये दान के पांच प्रकार फरमाये हैं; इनमें से आदि के दो मोक्ष के देनेवाले हैं और अन्त के तीन भोग–समृद्धि के देने वाले हैं. यहां अभय दान की श्रेष्ठता दिखलाने के लिये एक बोध जनक दृष्टान्त बताते हैं—

(अभयदान पर)

❀ बोध जनक—दृष्टान्त ❀

एकदा राजगृह नगर की राजसभा में विराजित श्रेणिक नृपेन्द्र ने फरमाया कि अहो सभासदों ! आजकल जगत में कौन वस्तु स्वादिष्ट और सुलभ्य है ? सुनते ही दरबारियों ने उत्तर दिया—महाराजा ! मांस अत्यन्त सरस और सस्ता है; यह बात कृपापरायण अभयकुमार को पसन्द न पड़ी, मन ही मन में विचार किया कि " ये सब लोग बड़े निर्दय हैं, इन के लिये कोइ ऐसी तज़वीज करनी चाहिये कि आइन्दा ऐसा कभी न बोल सकें " ठीक कुछ विचारणाकर रात्री में अभयकुमार एक छुपावेश धारणकर एक जागीरदार के मकान पर गये और इस प्रकार कहा—साहब ! आज राजपुत्र असाध्य बीमार होगये हैं उन के लिये दो टँक (तोला) मनुष्य के कालजे के मांस की जरूरत है, अन्यथा उन का जीवन रहना कठिन है, ऐसा राजवैद्य का कहना है, अतः आप शीघ्र ही दीजिये गा, आपलोगों की आजीविका महाराजाधिराज पर ही अवलम्बित है, इसलिये आप को यह कार्य अवश्य ही करना चाहिये, तब जमीनदार ने कहा—हे

भाई ! तुम मुझ से एक हज़ार मोहरें लेजाओ; मगर मुझ को छोड़दो और दूसरे के पास जाओ ! इस तरह क्रमशः सब ने उत्तर देकर द्रव्य दिया, अल्प टाइम में ही अभयकुमार लाखों दीनार लेआये, राज सभा के समय मोहरों का ढेर लगा दिया और ठीक समय पर तमाम दरबारियों को उद्देशकर कहा—महानुभावों ! कल तुम सब लोग कहते थे कि मांस सस्ता व स्वादु है, फिर आज़ तो इतने द्रव्य की एवज़ में तोला दो तोला भी मांस नहीं मिल सका इतना कहकर कुँवर ने दरबारियों का भारी तिरस्कार किया, सर्व लोग लज्जित हुवे; इस बख्त अभय कुमार के उपदेश से सर्व मनुष्यों ने मांस भक्षण करने की प्रतिज्ञा ग्रहण की. सच है—

स्वमांसं दुर्लभं लोके। लक्षेणाऽपि न लभ्यते ॥ अल्पमूल्येन लभ्येत। पलं परशरीरजम् ॥ १ ॥

भावार्थ—जगत में अपना निज का मांस दुर्लभ है; कारण कि लाखों द्रव्य देने पर भी नहीं मिल सकता और दूसरों के शरीर का मांस (ढोरों का मांस) तो अल्प मूल्य में ही मिल जाता है ! देखो जगत

की अजब गति !—कहने का परमार्थ यह है कि अभय कुमार के समान अन्य सज्जनों को भी अभय दान में निपुण बनना चाहिये.



दुष्टकर्मों का नाश कराकर निर्जरा पद को प्राप्त करावे वह ' तप ' कहा जाता है, अथवा इच्छा के निरोध को तप कहते हैं, सकल लब्धि दायक बाह्य और आभ्यन्तर भेदों से वह बारह प्रकार का होता है; इस की व्याख्या नवतत्व प्रकरणादि से जानना. तपपद पर दृढप्रहारी का दृष्टान्त समझना—' मुख ' शब्द से भावना का ग्रहण होता है; भरतादिवत् भव्यात्माओं को निरन्तर शुभ भावना भानी चाहिये.



इस चातुर्मास में महाअनर्थकारी परनिन्दा का सर्वथा त्याग करके आत्मनिन्दा करनी चाहिये, यहाँ एक दिलचस्प कथा प्रकाशित करते हैं—

(आत्मनिन्दा पर)

चितारे की पुत्री की दिलचस्ब कथा

कांचनपुर का नरेश जितशत्रु एक वख्त अपनी राज सभा में बैठा हुवा था, उस समय एक मुसाफिर राजा को नमनकर योग्य स्थान पर बैठ गया; नृपतिने पूछा–हे बटाउ ! तुझे अनेक राज्यस्थानों का अनुभव है तो मेरे राज्य में कोइ कमी है क्या ? पथिकने तुरन्त उत्तर दिया–महाराज ! आपके राज्य में सब कुछ होते हुवे भी एक चित्रशाला की खास कमी है; राजा ने स्वीकार किया और उस ही वख्त एक विशाल चित्रशाला तैयार कराने का हुकुम फरमा दिया तथा उसकी योजना के लिये एक चुनन्दा ऑफिसर भी नियत कर दिया, चित्रशाला का काम झपाटे से चलने लगा, उस बटाउंको पारितोषक देकर बिदा किया.

सब के बराबर एक वृद्ध चित्रकार को भी भित्त–विभाग मिला; मगर वह अशक्त होने से चाहिये उतना काम दिनभर में पुरा नहीं कर सकता था; अतः खान–पान भी वहीं पर किया करता था; उस की

कनकमंजरी नाम की एक बाहोंश कन्या थी; वह अपने पिता के लिये हमेशां भोजन ले जाया करती थी, एक दिन वृद्ध अपनी नित्य आदत के अनुसार भोजन के समय पखाने गया हुवा था, उस समय कनकमंजरी ने एक आवेहूव सुन्दर मोर चितरा, इस अवसर में चित्रशाला का निरीक्षण करने राजा साहव की सवारी पधारी, चोतर्फ अवलोकन करते हुवे नृपति की दृष्टि उस नूतन चित्रित मयूर पर पड़ी, तत्काल उस पर हाथ डाला, इस वख्त हाथ पर ताली मारकर खड़खडाट हंसती हुई मंजरी बोली अहा ! "पलंग का चौथा पाया मिल गया" सुनकर राजा शर्मिन्दा हुवा और चारों पाये की हकीक़त जानने की इच्छा पकट की, अत्यन्त आग्रह होने से चित्रकार की पुत्री ने इस प्रकार खुलाशा किया—

राजेन्द्र ! अज्ञान रूप पलंग के मूर्खरूप चार पाये हैं—पहिला मूर्ख तो चित्रशाला का ऑफिसर है कि जिसने मेरे अशक्त वृद्ध पिता को सव के बरावर चित्रस्थान दिया, दूसरा मूर्ख मेरा पिता है कि भोजन करने के समय निरन्तर पखाने जाता है, तीसरा मूर्ख आप का प्रधान है कि जो शान्तिका भंगकर आज़ बाज़ार में पूरजोश से घोडा दौडाता जाता था, चौथे मूर्ख आपश्री हैं कि चित्रित मोर पर पकड़ने की गरज़

से हाथ डाला–राजा तो यह सुनकर दंग रह गया और हृदय में विचार ने लगा कि “इस बुद्धिशालिनी कन्या के साथ अवश्य सादी करना चाहिये, यह स्त्री रत्न मेरे लायक है” ऐसा निश्चय कर प्रधान के ज़रिये उस के पिता को समझा–बुझाकर कनकमंजरी के साथ धाम धूम से विवाह किया और एक सुन्दर राज-भुवन में उसे दाखल की; राजा के ४९९ रानियें पहिले थीं और यह मानो पांच सौ का नम्बर पूरा करने की गरज़ से लाइ गई हो, यह मानना अनुचित न होगा.

समय रात्री का था, सुन्दर शयनगृह नानाविध शृँगारों से सजाया गया था, उस में अनेक सुगंधी दीपक झगझगाट कर रहे थे, इस वख़्त राजा साहब दबदबे से इस शयन-भुवन में दाखल हुवे, नवोढा रानी ने विनय पूर्वक नमन किया, और एक सुन्दर पलंग पर बैठकर रसपूर्ण बातें करने लगे, आख़ीर रतिक्रीड़ा करने के पश्चात् महाराजा ने रानी की कुशलता जानने के हेतु कपट निद्रा लेना शुरू की, इतने में पूर्व शीक्षिता दासी बोली–स्वामिनी ! रात्री अभी बहुत बाकी है कृपा कर कोइ दिलचस्प कथा

सुनाओ, रानी की आनाकानी होते हुवे भी दासी के अत्याग्रह से राजपत्नी ने वड़े ढव से एक कथा कहना आरंभ की—

" किसी एक नगर में राजा ने ज़ेवर वनवाने के लिये सुनारों को सुन्दर दीपको का बदोवस्त करके एक ऐसे तलघर में रक्खे कि जहा सूर्य का उद्यास्त मालुम न होता था, तदपि रात्री होते ही एक सुनार बोला–भाइयों ! दिन अस्त हो गया है, " तो हे दासी ! मैं पूछती हूं की ऐसी हालत में सुवर्णकार को रात्री का कैसे मालुम हो गया ? दासी ने कहा–स्वामिनी ! इस का जवाव मेरी शक्ति के बहार है; अतः आप ही कृपा करें, रानी ने उत्तर दिया–हे चेटि ! आजतो मिष्टान की घेन आखों में घुल रही है वास्ते इस का खुलाशा कल करूंगी.

इस कथन को सुनकर राजा भी विचार सागर में गौते खाने लगा, मगर कहीं पता न पाया तवतो भूपति के आश्चर्य का पार न रहा, खुलाशा सुनने के लिये दूसरे दिन भी इस ही रानी को वारा बक्षा और

पहिले दिन की तरह ठीक समय पर राजा रणवास में प्रवेश हुवा, जवाब जानने की तीव्र इच्छा होने से थोड़ी बातचीत कर तुरन्त ही सो गया; तब दासी बोली रानी साहबा! कृपा कर कल की बात का खुलासा करो? नृपपत्नी ने कहा अरे दासी! एक सामान्य विषय का भी तुझे ज्ञान नहीं तो राजदासी कहलाने में तुझे लज्जा आनी चाहिये; यह सुनकर पृथ्वीपति मन ही मन में शरमाने लगा "अहो! जिस को मैं भी नहीं समझ सका उस को बिचारी दासी कैसे जान सकती है? अरे! कहीं रानी मुझे प्रश्नकर मेरी बुद्धि का माप न करले" यह सोच कर नाक के फण जोर से खुर्राट ने लगा; आख़ीर रानी ने कहा—दासी! सूर्यास्त जानने का कारण यह है कि उस सुनार को रात्रि में 'रातिन्दा' आता था—इस तरह राजराणी ने नविन २ अद्भुत कथाएँ कह कह कर छः मास तक राजेन्द्र को अपने यहाँ बुलाये; यह नवीन रानी राजा की अब अत्यन्त प्रेमपात्री बन गई है.

इस उच्च अवस्था में पहुँच ने पर भी कनकमंजरी एकान्तस्थान में बैठकर नित्य आत्मनिन्दा करती रहती थी—राज रमणी के तमाम लबास को उतार देती और पितृगृह के सामान्य वस्त्रों को पहनकर इस

प्रकार चिन्तन करती—" हे आत्मन् ! तूँ अपनी पूर्वस्थिति को याद कर ! राज्यमान निश्चल नहीं है, राज्य वैभव और सुखसामग्री अशास्वत है, सदा एकसा समय नहीं रहता, अतः तूँ अहकार से निरन्तर दूर रह ! " इत्यादि भरसक आत्मनिन्दा करती थी—

इधर अन्य रानियां अपने यहां राजा नहीं आने से खूब चिडा गइ थी, और नवीन रानी के छिद्र खोजने लगी थीं, एक दिन समस्त रानियों ने मिलकर नृपति से निवेदन किया—हे स्वामिन् ! जिस के ऊपर आप खूब आसक्त हो रहे हो वह एकान्त मे बैठकर आपपर नित्य कामन—टुमन करनी है ! राजा ने अनुभव किया तो मालुम हुवा कि रानियें द्वेष से शिकायत करती हैं, यह तो शान्तिपूर्वक अपनी आत्मनिन्दा करती है, राजा ने प्रसन्न होकर नवोढा पत्नी को 'पट्टरानी का इल्काब इनायत किया और अन्य पत्नियों को अपमानिती बनाई—कहने का भाव यह है कि जिसतरह कनकमंजरी अपनी आत्मनिन्दा से उच्च दरजे को प्राप्त हुई, इस ही तरह भव्य लोगों को आत्मनिन्दा करके अपना कल्याण करना चाहिये.

अतिचारों की आलोचना.

इस चातुर्मासिक पर्व के आने पर भव्यात्माओं को अपने २ अतिचारों (दोषों) की आलोचना करना चाहिये, गुरु महाराज के और संघ के समक्ष मिच्छामिदुक्कड़ देना चाहिये; साधु महात्मा के चरण सत्तरी के (७०) और करण सत्तरी के (७०) इस तरह (१४०) अतिचार होते हैं * उनका बयान ग्रंथ गौरव के भय से यहां नहीं किया गया है—श्रावकों के (१२४) अतिचारों की व्याख्या संक्षेपतः प्रकाशित करते हैं—

* वय (५) समणधम्म (१०) संजम (१७) वेयावच्चं च बंभगुत्तिओ (९)॥ नाणाइतिगं (३) तव (१२) कोहनिग्गहो (४) इोइ चरणमेयं ॥ १ ॥ पिंडविसोही (४) समइ (५) भावणा (११) पडिमाय (१२) इंदिय निरोह (५)॥ पडिलेहण (२५) गुत्तिओ (३) अभिग्गहो (४) चेव करणं तु ॥ २ ॥

पणसलेहण पन्नरसकम्म। नाणाइअठ्ठ पत्तेय॥ बारसतव विरयतिग। पणसम्म वयाण पत्तेय ॥ १ ॥

भावार्थ—संलेखना के (५) कर्मादान के (१५) ज्ञान-दर्शन-चारित्र प्रत्येक के आठ-आठ (२४) तप के (१२) वीर्य के (३) सम्यक्त्व के (५) हरएक व्रत के पांच-पांच के हिसाब से बारह व्रत के (६०) इस प्रकार कुल अतिचार (१२४) होते हैं

सलेखना के पांच अतिचार-(१) इस तप के प्रभाव से मैं मनुष्य-चक्रवर्ती-राजादि होउं,-ऐसा अभिलाप करना 'इहलोकाशसा' नाम का अतिचार. (२) इस शुभ अनुष्ठान से परभव में देवता होजाउं; ऐसी इच्छा को 'परलोकाशसा' कहते हैं. (३) मैं कृतअनशन होकर लोगों से पूजित हूं, अतः बहुत कालतक जीवु तो उत्तम हो; ऐसी आकांक्षा को 'जीविताशसा' वदते हैं. (४) अपूज्यपन से या व्याधि पीडा से ऐसा विचारे कि मैं शीघ्र मरजाउं तो अच्छा हो, ऐसे अभीष्ट को 'मरणाशंसा' बोलते हैं (५) शब्द-रूप (काम) रस-गध-स्पर्श (भोग) ये पांचों पदार्थ मुझे प्रशस्त रूप में मिलें, ऐसी चिन्तवना

को ' कामभोगाशंसा ' कहते हैं– संलेखना तप करके ऊपर कही गई अभिलाषाओं को करें तो उसे ये अतिचार लगते हैं; अतः इन अतिचारोंमें से कालत्रय सम्बंधी जो कोइ अतिचार लगा हो तो मैं संघ के समक्ष मिच्छामि दुक्कड़ देता हूँ–इस तरह आगे सर्वत्र कहना.

कर्मादान के पन्द्रह अतिचार–(१) आजीविकादि निमित्त काष्ट जलाकर कोयले तैयार करके अथवा ईंट कवेलु–चूना वगैरा निम्बाहड़े में पचवाकर बैंचे; वह ' अंगारकर्म ' नाम का अतिचार. (२) वृक्ष–वेलड़ियों पर से पत्र–पुष्पादि तौड़कर बैंचना ' वनकर्म ' (३) गाड़ियें ' पहिये या धुरें वगैरा बनवाकर व्योपार करना ' शकटकर्म ' (४) गाड़ी–घोड़ा–बेल प्रमुख किराये फिराना ' भाटककर्म ' (५) हल–कुद्दाल–गेंती आदि से भूमि विदारण करना तथा पाषाण घड़ना एवं जवादि धान्य को भूंजना 'स्फोटककर्म' अतिचार कहा जाता है; ये पांच ' कर्म ' नाम से पहिचाने जाते हैं–(६) पहिले से ही दिये हुवे पैसोंद्वारा म्लेछादि के पास से हाथी दान्त मंगाकर या स्वयं लाकर बेपार करना; वह ' दन्तवाणिज्य ' अतिचार. (७) लाख, नील, मेणसल और सुला हुवा धान बेंचना ' लाक्षवाणिज्य ' (८) मद्य, मांस, घी, तैलादि

रस का व्योपार करना ' रसवाणिज्य ' (९) ज़हर का वेपार करना ' विषवाणिज्य ' (१०) दास–दासी
तथा ढोरों का व्यापार करना ' केशवाणिज्य ' अतिचार वदा जाता है, ये पांच ' वाणिज्य ' नाम से बोले
जाते हैं–(११) सेलड़ी–तिलादि को पीलना ' यन्त्रपीडन ' नाम का अतिचार. (१२) बैल, घोडे प्रमुख
का पुरुषचिन्ह–कान–पूंछादि काटना ' निलांछन ' (१३) खेत–पर्वत–जंगल वगैरा मे दवाड़ लगाना
' दवदान ' (१४) गेहूँ प्रमुख को बोने में तथा पोषण करने में तलाव, कुवा वगैरा का पानी खाली कर
देना ' सरोहृदशोषण ' (१५) व्यभिचारी दास दासी आदि का पालन–पोषण करना 'असतीपोषण' अतिचार
कहा जाता है, ये पांच सामान्य कहे जाते –इन अतिचारों में से जो कोइ अतिचार०

ज्ञानाचार के आठ अतिचार–(१) अकाल के समय, असज्झाय के दिनों में श्रुत अध्ययन करना;
प्रथम अतिचार. (२) पादादि संघट्टन से गुरुमहाराज का, ज्ञान का और ज्ञानोपगरणों का अविनय करना.
(३) इन का वहुमान न करना (४) उपध्यान किये विना श्रुत का पठन करना. (५) जिस के पास
पढे हों उन गुरु का नाम लोप करना (६) देव वंदन तथा प्रतिक्रमणादि में अशुद्ध उच्चार करना. (७)

इन का अशुद्ध अर्थ पढना. (८) इन में सूत्र और अर्थ दोनों का अशुद्ध पठन करना; आठवाँ अतिचार कहा जाता है–इन अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

दर्शनाचार के आठ अतिचार–(१) देव–गुरु–धर्म के विषय में शंका (अश्रद्धा) करना; प्रथम अतिचार. (२) तमाम धर्म उत्तम हैं; ऐसी मान्यता रखना. (३) धर्म फल में संदह करना. (४) मिथ्यादृष्टियों का प्रभाव देखकर उनपर उग्रराग करना. (५) साधुजनादि महापुरुषों की प्रशंसा न करना. (६) नूतन प्रतिबोधित श्रावक वगैरः को धर्म में स्थिर न करना. (७) साधर्मिकों की प्रेमपूर्वक सेवा न करना. (८) शक्ति होते जिनशासन का उद्योते न करना; आठवाँ अतिचार बोला जाता है—इन अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

चारित्राचार के आठ अतिचार–सामायिक और पौषधादि में इर्यासमिती वगैरः (५) समिती–मनोगुप्ति प्रमुख (३) गुप्ति का पालन नहीं करना; ये आठ अतिचार वदे जाते हैं—इन अतिचारों में से जो कोइ अतिचार०

तपाचार के बारह अतिचार—'अणसणमुणोयरिया' इत्यादि बारह प्रकार के तप का सम्यग् आराधन न करने से (१२) अतिचार कथे जाते हैं–इन अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

वीर्याचार के तीन अतिचार– (१) मनोवीर्य (२) वचनवीर्य (३) कायवीर्य, इन तीन पराक्रमों का देववदन, प्रतिक्रमण, सज्झाय, ध्यान, दान, शील, तपादि में सदुपयोग नहीं करना; ये तीन अतिचार कहे जाते हैं–इन अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

सम्यक्त्व के पांच अतिचार– (१) तीर्थंकरों के फरमाये हुए वचनों पर संदेह करना 'शंका' नाम का अतिचार. (२) अन्य २ दर्शनों की अभिलाष करना 'कांक्षा' (३) धर्म के फलपर शक लाना अथवा मलमलीन गात्र वाले मुनियों को देखकर उन की निन्दा करना, 'विचिकित्सा' (४) मिथ्यादृष्टियों की तारीफ करना 'कुलिंग प्रशंसा' (५) मिथ्यादृष्टियों का परिचय करना 'कुलिंगसंस्तव' अतिचार कहा जाता है–इन अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पांच अतिचार–(१) पशु आदि को निर्दयता से चाबुक वगैरः
मारना; यह ' वध ' नाम का अतिचार. (२) रस्से से या सांकल से कसकर बांध देना ' बंध ' अति०
(३) शस्त्र से कान, पूंछ, अंडकोश वगैरा छेदना ' छविच्छेद ' अति० (४) बैल, ऊंट प्रमुख के पीठपर
वा कंधेपर अधिक भार डालना ' अतिभार ' अति० (५) गाय, घोड़ा वगैरः को वक्तसर अन्न, जल नहीं
देना ' भक्त–पान व्यवच्छेद ' नाम का अतिचार कहा जाता है–इन अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

स्थूल मृषावादविरमण व्रत के पांच अतिचार–(१) तूँ चौर है–तूँ जार है; इत्यादि अविचार्य शब्द
दूसरे के प्रति कहना ' सहसा अभ्याख्यान ' अतिचार, (२) किसी को एकान्तस्थल पर देखकर राज
विरुद्ध चिन्तन का आक्षेप करना ' रहोभ्याख्यान ' अति० (३) विश्वासपात्र प्रियतमा और मित्र की
गुप्तवार्त्ता प्रकाशित करना ' स्वदारामंत्रभेद ' अति० (४) कष्टपतित को अमुक प्रकार झूंठ बोलने की
सलाह देना ' मृषोपदेश ' अति० (५) लेख लिखना ' कूटलेख ' नाम का अतिचार समझना–इन
अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पांच अतिचार—(१) चौर की चुराई हुइ वस्तु ग्रहण करना ' स्तेनाहृत ' अतिचार० (२) चौर को चौरी का साधन देकर सहाय करना ' स्तेनप्रयोग ' अति० (३) घृत वगैरा में तद्रुप चरबी वगैरा मिला देना ' प्रतिरूपक्षेप ' अति० (४) विरोधि राज्य में लाभ के लिये वस्तु बेंचना ' विरुद्धगमन ' अति० (५) लोकप्रसिद्ध तोल— माप को न्युनाधिक करना ' कूटतुला-कूटमान ' नाम का अतिचार कहा जाता है—इन अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

स्थूल मैथुन विरमणव्रत के पांच अतिचार—(१) वेश्या, विधवा और कन्या के साथ गमन करना ' अपरिगृहिता गमन ' अतिचार० (२) भाड़ा देकर न्यून टाइम तक अपनी बनाकर उस के साथ काम-क्रीडा करना ' इत्वरी गमन ' अति० (३) स्त्री–पुरुष चिन्ह ' अंग ' कहा जाता है, तदतिरिक्त स्तन, जंघा, मुखादि विकारी अवयवों को ' अनंग ' कहते है; उन में रमण करना " अनंगक्रीड़ा " अति० (४) अपने सन्तान की तरह अन्य के सन्तानों का विवाह सम्बंध करना ' परविवाहकरण ' अति० (५) काम-

भोग के अन्दर उत्कर्ष अभिलाषा करना ‘तीव्रानुराग’ नामक अतिचार कहलाता है–इन अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

स्थूल परिग्रहपरिमाण व्रत के पांच अतिचार–(१) “गणिम–धरिम–मेय और परिच्छेद + ये चार प्रकार के परिग्रह के समझना” इनमें से गेहूँ–चावल वग़ैरः धान्य को सस्ता जानकर साइ आदि स्वीकार लेना और नियम की अवधितक माल मालिक के घर पर ही रखना; प्रथम अतिचार० (२) क्षेत्र–मकान वग़ैरः का बिचला भाग निकालकर दोका एक बना लेना. (३) अवधिकी पूर्णाहूती पर मैं वापिस लेलूंगा, इस बुद्धि से सोना–चांदी प्रमुख अपनी पत्नि वग़ैरः को दे देना. (४) ताम्बे–पीतल वग़ैरा की थालियें आदि तुड़ाकर दस की पांच बना लेना. (५) पहिले सामान्यतः नियम ग्रहण करके पीछे से द्विपद–चतुष्पद के संतान को अभिग्रहित संख्या में गिन लेना, पांचवाँ अतिचार कहा जाता है– इन अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

+ (१) गणिम-सुवर्णमोहर, रूपैये, गिन्नी वग़ैरः गिनती की चीजें (२) धरिम-सोना, चांदी, अनाज़, इत्यादि० तौल की वस्तुएँ (३) मेय-वस्त्र, ज़मीन, आदि० मपती की पदार्थें (४) परिच्छेद-दास, दासी, मवेसी वग़ैरः जानना।

दिग्परिमाण गुणव्रत के पांच अतिचार–(१+२+३) ऊंची–नीची–तिरछी, इन दिशाओं के प्रमाण को उलघन कर कोइ वस्तु मगाना या भेजना (४) एक दिशा का क्षेत्र अन्य दिशा में डालना ' क्षेत्रवृद्धि ' (५) अपने किये हुवे क्षेत्रप्रमाण को भूलजाना ' स्मृतिअन्तरधान ' नाम का अतिचार जानना–इन अतिचारोंमें से जो कोइ अतिचार०

भोगोपभोग गुण व्रत के पांच अतिचार–(१) सच्चित्त वस्तु का सर्वथा त्याग या प्रमाण कर दाड़म वगै़र खाना; पहिला अतिचार (२) पका हुवा आम सच्चित्त गुठली से वधा हुवा हो, उसे चूंसना (३) अचालित कणकादि यानी आटा वगैरः ' अप्पोल ' कहा जाता है; उस का भक्षण करना. (४) पृथुकादि यानी पूख वगैरः ' दुप्पोल ' बोला जाता है, उन का खाना (५) बहु बीजे तथा अतृप्तिजनक तुच्छ वस्तुओं का भक्षण करना पांचवॉ अतिचार कथा जाता है–इन अतिचारों में से जो कोइ अतिचार०

अनर्थदंड गुण व्रन के पांच अतिचार–(१) काम भोग को प्रदीपन करनेवाले शास्त्रों का अभ्यास

करना 'कंदर्प' नाम का अतिचार. (२) मुख, नेत्र और भौंएँ द्वारा विकारी भांडचेष्टा करना 'कौकुच्य' (३) गाली वग़ैरः अश्लील शब्दों का बोलना 'मौखर्य' (४) जरूरत से अधिक ऊँखल, मूसल, घट्टी प्रमुख का संग्रह करना 'संयुक्ताधिकरण' (५) स्नानादि के समय तैल-मिट्टी वग़ैरः सामग्री अधिक इखट्टी करना अथवा सरोवरपर स्नान करके पृथ्वी-अप् आदि की विशेष विराधना करना 'भोगोपभोगातिरेक' नाम का अतिचार वदा जाता है-इन अतिचारों में से जो कोइ अतिचार०

सामायिक शिक्षाव्रत के पांच अतिचार-(१) मन के अन्दर पापमय व्यापार विचारना 'मनो दुःप्रणिधान' अतिचार० (२) विकथा (विरुद्ध कथा-पापकथा) करना 'वग्दुःप्रणिधान' (३) अप्रमार्जित स्थानपर हाथ वग़ैरः रखना 'कायदुःप्रणिधान' (४) सामायिक करके मुहूर्त्त प्रमाण कालतक स्थिरता न करना 'अनवस्थान' (५) सामायिक करके भूलजाना कि मैंने सामायिक किया या नहीं 'स्मृतिविहीनता' अतिचार समझना-इन अतिचारों में से जो कोइ अतिचार०

देशावगासिक शिक्षा व्रत के पांच अतिचार-(१) अनभिग्रहित क्षेत्र से किसी को कहकर कोइ

वस्तु मगाना 'आनयप्रयोग' अतिचार० (२) अनभिग्रहित क्षेत्र में कोइ वस्तु किसी के साथ भेज देना 'प्रेष्यप्रयोग' (३) कोइ कार्यवशात् किसी से किसी को बुलाता हुवा देखकर अपना कार्य साधने के लिये शब्द करना 'शब्दानुपात' (४) कार्यवशात् दूसरे के प्रति अपना रूप दिखाना 'रूपानुपात (५) अंगीकृत क्षेत्र के बाहार का काम ज्ञापन करने के लिये ककर वगैर· फैकना 'पुद्गलक्षेप' अतिचार कहा जाता है–इन अतिचारों में से जो कोइ अतिचार०

पौपधोपवास शिक्षा व्रत के पांच आतिचार—(१) अप्रतिलेखित या अयोग्य प्रतिलेखित शय्या–संथारा का सेवन करना, पहिला अतिचार. (२) अप्रमार्जित या अयोग्य प्रमार्जित शय्या–संथारा का आसेवन करना (३) अपड़िलेहित भूमिपर स्थडिल–मात्रा का परठना (४) अप्रमार्जित भूमिपर लघुनीत–वडीनीत परठना. (५) प्रभात काल में पारणे के लिये अमुक २ आहार तैयार करेंगे, इत्यादि चिन्तन करना, पांचवॉ अतिचार समझना–इन अतिचारों में से जो कोइ आतिचार०

अतिथी सविभाग शिक्षाव्रत के पांच आतिचार—(१) मुनिराज को आते हुवे देखकर नहीं देने

की बुद्धि से देय वस्तु को सचित्त वस्तु पर रख देना; प्रथम अतिचार. (२) देने योग्य वस्तु को सचित्त फलादि से ढक देना. (३) अपने मोदक वगैरः को दूसरे के हैं; ऐसा कहना. (४) यह निर्धन भी इतना दान देता है तो मैं इस से क्या कम हूँ ? ऐसे ईर्षाभाव से देना (५) आहार लेआकर साधु महाराज गौचरी कर रहे हों, उस वख्त आमन्त्रण करे, मतलब कि हृदय में यह इच्छा हो कि 'आहार भी बहराना न पड़े और अभिग्रय–भावना भी होजाय' ऐसी अशुद्ध आचरणा करना; पाचवाँ अतिचार कहा जाता है–अतिचारों में से जो कोइ अतिचार०–इस प्रकार बारह व्रत के (६०) अतिचारों में से जो कोइ अतिचार लगा हो०

कहने का तात्पर्य यह है कि श्रावकों के (१२४) अतिचारों में से कालत्रय सम्बंधी जो कोइ अतिचार लगा हो उस का त्रिविध २ संघ समक्ष 'मिच्छामि दुकड़' देता हूँ; ऐसा हर एक भव्यात्माको उत्कर्ष भाव से कहना चाहिये.



❀ उपसंहार ❀

इस चातुर्मासिक व्याख्यान में अनेक धर्मकृत्य, भक्षाभक्ष विचार, अनुपम दृष्टान्तों और अतिचारों की आलोचना वगैरः का बयान सुन्दरता से प्रकाशित किया गया है; उनपर पूर्ण पर्यालोचन कर उन का अनुकरण करना ही श्रवण का सार है—भवतु सर्वेषां धर्मवृद्धिः





अब्द युग्मं वसु नन्द भू (१९८२) जेष्ठ पूर्णिमा सार ॥ कच्छ मांडवी बन्दरे। पूर्ण किया श्रीकार ॥ १ ॥
सुखसागर भगवान गुरु। ज्ञान–चरण अभिराम ॥ उपकारी त्रैलोक्य गुरु। परम शान्त विश्राम ॥ २ ॥
इन के दिव्य पसाय से। व्याख्यान सुखधाम ॥ आनन्दसागरने रचा। वीरपुत्र उपनाम ॥ ३ ॥



❀ पहिला चातुर्मासिक व्याख्यान सम्पूर्ण ❀

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



दूसरा-श्रीपर्युषण व्याख्यान.



विश्ववंद्य वंदन करूं । शान्तिनाथ शिरताज ॥ सद्गुरु को सादर नमुं । विजय बनो मम काज ॥ १ ॥
कृपादृष्टि अवलम्बकर । पर्युषण व्याख्यान ॥ आदर पूर्वक मैं रचुं । सज्जन सुनो सुजान ॥ २ ॥

जगतवंद्य, विश्वोपकारी, देवाधिदेव, श्री जिनेश्वर देव को कोटिशः अभिवंदन करके तथा उत्कर्षत्यागी, परमार्थजीवी, परम कृपालु, श्रीगुरुदेव को अनेकश. प्रणाम करके मैं यह धर्म-मार्ग दर्शक ' श्री पर्युषण व्याख्यान ' संस्कृत परसे देवनागरी भाषा में निर्माण करता हूं-धर्माभिलाषियों ! स्वस्थचित्त होकर इस

अनुपम व्याख्यान को साद्यन्त श्रवण करना और उस पर पूर्ण मननकर कर्त्तव्य कुशल होना; जिस से मनुष्य भव सार्थक हो.

मूल—वृतान्त

सकल दुष्टकर्म निवारक, निर्मल धर्मकर्म कारक, प्रभूतशर्म प्रदायक, पर्वाधिराज श्री पर्युषण पर्वके आने पर समस्त देव और देवेन्द्र मिलकर नन्दीश्वर नामक अष्टम द्वीप पर जाते हैं; उस का वर्णन इस प्रकार है—नन्दीश्वर द्वीप के मध्य भाग में चारों ओर श्याम वर्ण के चार अंजनगिरी पर्वत हैं, उन प्रत्येक के चारों तरफ चार २ बावड़ियाँ हैं, उन बावों के मध्यभाग में श्वेत वर्ण के दधिमुख पर्वत हैं और दो २ बाव के अन्तर में रक्त वर्ण के दो २ रतिकर पर्वत हैं; मतलब कि एक दिशामें (१) अंजन गिरी तथा

उस के परिवार भूत (४) दधिमुख और (८) रतिकर पर्वत हैं, इस तरह (१३) पर्वत हुवे तब चार दिशाओं में कुल (५२) पर्वत होते हैं, उन एक २ गिरी पर एक २ जिन मन्दिर है, इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीप बावन जिनालयों से सुशोभित है, एक २ जिनालय में (१२४) जिन प्रतिमाओ विराजमान हैं; इस प्रकार सर्व (६४४८) प्रभुप्रतिमाओं से देवालय दीप रहे हैं, प्रत्येक जिनभुवन चार २ द्वारों से अलङ्कृत है, वहाँ अनेक देव–देवियों से परिवृत सकल सुरेन्द्रजन वर्धमान भाव से अट्ठाई महोत्सव करते हैं, चन्दन–पुष्प–धूपादि द्रव्यों से शास्वत जिन चैत्यों की पूजा करते हैं, प्रभु के सम्मुख भक्तियुक्त नानाविध नाटक करते हैं और जिनेश्वर के गुणगान कर अपना कल्याण करते हैं, इस कदर आठ दिन तक महोत्सव करके शान्तिपूर्वक अपने २ स्थान पर वापिस चले जाते हैं, कहने का तात्पर्य यह है कि इस ही तरह श्रावकों को भी तीर्थंकर देव प्रकाशित इस पर्व के आने पर महोत्सव सहित आठ दिन पर्यन्त धर्म का प्रशस्त आराधन करना चाहिये–अब इस पर्व में श्रावकों के करने योग्य कितनेक कर्तव्य दिखलाते हैं:—

श्रावकों के विविध कर्तव्य.

आश्रवकषायरोधः—कर्तव्यः श्रावकैः शुभाचारैः ॥ सामायिकजिनपूजा-तपोविधानादिकृत्यपरैः ॥ १ ॥

भावार्थः—सामायिक, प्रभुपूजा, तपश्चर्या के विधानादि कार्य में तत्पर; ऐसे शुभ आचारवाले श्रावकों को आश्रव- कषायादि निरोध करना चाहिये.

जीवहिंसा-असत्यवाद चोरी-मैथुन और परिग्रह; इस पाँच आश्रवों (पाप के आने के द्वारा) का परित्याग करना चाहिये-सब से पहिले श्रावकों को बेन्द्रि आदि त्रस जीवों की विराधना टालनी चाहिये; शास्त्रकारों ने सर्व दानों में अभयदान श्रेष्ठ कहा, सुयगडाङ्ग सूत्र का फरमान है कि 'अभयप्पहाणं' अर्थात् अभयदान प्रधान है, इस की महिमा अन्यत्र भी इस प्रकार गाई गई है—

दीयते म्रियमाणस्स । कोटिजीवितमेव च ॥ धनकोटिं न गृह्णायीत् । सर्वे जीवितमिच्छति ॥ १ ॥
यो दद्यात्काञ्चन मेरु । कृत्स्नां चापि वसुधराम् ॥ एकस्य जीवित दद्या-न्नहि तुल्यमहिंसया ॥ २ ॥

भावार्थ—मरते हुवे मनुष्यों को एक तरफ क्रोड सुवर्ण मोहर देने लगे और एक तरफ जीवित दान देने लगे तो क्रोड द्रव्य का अस्वीकारकर सर्व लोग जीना पसंद करेंगे, अर्थात् जीवित दान की अभिलाषा करेंगे. १—कोइ दातार किसी को सुवर्णमय मेरु (मेरुपर्वत जितना सोना) प्रदान करे या समग्र पृथ्वी बक्षीस करदे तदपि दयापूर्वक एक जीवित दान के मुकावले ये दान नहीं आसकते २—अभयदान की महत्ता दिखाने के लिये यहां पर एक सुन्दर दृष्टान्त प्रकाशित करते हैं—

अभयदान पर
एक चौर का दृष्टान्त.

वसन्तपुर नगर के राजा अरिदमन के पांच रानियाँ थीं, उन में से एक अपमानिती और चार मानिती थीं; एक समय नृपति अपनी चार रानियों के साथ नानाविध क्रीड़ा–विलास करता हुआ अपने

महल के गोख में बैठा हुवा था, उस वख्त कंठ में कणवीर (कनेर) का लाल माला धारण कराया हुवा, लाल वस्त्र पहनाया हुवा और लाल चंदन से विलेपित शरीरवाला तथा जिस के आगे मृत्यु सूचक डिंडिम (नगारा) बज रहा है; ऐसे एक चौर को राजमार्ग में लेजाता हुवा ललनाओं ने देखा; इस तरह विडम्बना से विडम्बित उस को देखकर रानियों ने राज पुरुषों को पूछा–भाईयो ! इस ने क्या अकार्य किया है? तब उनमें से एक ने कहा–महारानीजी ! इस ने परद्रव्य हरण करके राजविरुद्ध अपराध किया है, यह बात सुनते ही एक रानी के दिलमें दया उत्पन्न होने से शीघ्र ही नृपेंद्र को विज्ञप्ति की–हे स्वामिन् ! आपने मुझ को पहिले एक वार वर दे रख्वा है उस के वदले आज़ मैं यह माँगती हूँ कि इस चौर पर एक दिन की रक्षा का मैं उपकार करूं; राजा ने सहर्ष स्वीकार किया, रानी ने उस चौर को घरपर लेजाकर स्नान–मंजन कराया, वस्त्राभूषण पहनाये और विध–विध उत्तमोत्तम सरस भोजन खिलाये, इस तरह इस की सुश्रुषा में एक हज़ार मोहरे सर्फ कीं, दूसरे दिन दूसरी रानी ने याचना कर दस हज़ार दीनार के खर्चे से उस की सेवा की तथैव तीसरे दिन तीसरी रानी ने एक लाख मोहरें व्ययकर उस की परिचर्या की और

चौथे दिन चौथी रानी ने एक क्रोड दीनार खर्च कर उस चौर की भक्ति की; इस प्रकार चार दिन बीत
गये, यह हकीकत सुनकर पांचवें दिन अनमानिती रानी ने राजा के निकट आकर वडी नम्रता से प्रार्थना
की–हे प्रभो! मेरे दौर्भाग्य वश आप की कृपा मुझपर नहीं है; अतः अव तक मैंने आप से कोइ याचना
न की; मगर आज़ आप परवर–दिगार से इस चौर के अभयदान की भिक्षा मॉगती हूं! राजा ने कर्णामृत
शब्द सुनकर तत्काल उस चौर को जीवितदान बक्षा और रानी को प्रदान कर दिया, अव रानी ने अपनी
हैसियत के माफिक उस की सादी सेवा कर कहा–"मैं तुझे जीवितदान देती हूं–आइन्दा कभी चौरी मत
करना" इत्यादि, 'रंक–राज्यवत्' अत्यन्त हर्षित होकर चौर अपने घरपर चला गया.

इधर वे चारों राजपत्नियें उस पाचवी रानी की उद्घाटना करने लगीं–इस ने क्या भक्ति की? इतना
ही नहीं वर्ना परस्पर भी महत्ता का विवाद करने लगीं, आखीर सव मिलकर इन्साफ कराने के लिये
प्रजापति के पास गईं, बुद्धिमान राजा ने सब कुछ सुनकर उस चौर को बुलाया और सर्व के समक्ष पूछा–
हे भाई! तुझ पर पॉचों में से सव से अधिक उपकार किस ने किया? चौर ने उत्तर दिया–महाराज!

पांचवीं रानी ने असीम उपकार किया है; कारण कि चार दिन तक तो बेहद सुखास्वादन होने पर भी मरण का भय मेरे सम्मुख उपस्थित था इस लिये कुछ भी आनन्द न आया; मगर जब कि मैंने पाँचवें दिन रानी के मुख से सुना कि 'तुझे जीवितदान दिया' बस फिर मेरे आनन्द का पार न रहा; अतएव अन्तिम रानी का आदर्श–उपकार श्लाघनीय है; यह सुनकर सब लोग उस अपमानीती रानी की प्रशंसा करने लगे, राजा ने उसे पट्टरानी के पदपर स्थापन की– कहने का भावार्थ यह है कि भव्य लोगों को भी इस तरह अभयदान देकर उन्नत दशा प्राप्त करनी चाहिये.



इस पर्व में श्रावकों को पहिले आश्रव से दूर रहने के लिये खांडना–पीसना, वस्त्रधोना वगैरः त्याग कराना चाहिये, तैली–लुहार–भड़भुजा प्रमुख से मिष्टावाणी द्वारा या धन खर्च करके आरंभ बंद कराना उचित है, शक्ति के अनुसार कारागृह से बंदीजनों को छुड़ाना जरूरी है, ग्राम–नगरादि में अमारी घोषणा

(पलती–पाखी) कराना श्रेयस्कर है; गरज़ कि जैसे बने वैसे जीवों की रक्षा करनी चाहिये–दूसरे आश्रव से मुक्त रहने में मृषाभाषण–गाली वगैर कुत्सित वाणी से अलग रहकर वचनशुद्धि करना चाहिये–तीसरे आश्रव से पृथक् रहने में मरणकष्ट पर्यन्त पहुँचा देनेवाले प्राणरूप परधन का हरण न करना चाहिये–चौथे आश्रव से विमुख रहने में लोकद्वय विरुद्ध परस्त्री का सर्वथा त्याग करके स्वस्त्री की मर्यादा करनी चाहिये–पाँचवे आश्रव से विमुक्त रहने के लिये धन–धान्यादि नवविध परिग्रह का प्रमाण करना समुचित है, अर्थात् अपरिमित तृष्णा को हटाकर मर्यादा करलेनी चाहिये.

इस पर्व में क्रोध–मान–माया–लोभ, इन चार कषायों का परित्याग करना चाहिये; कारण कि इन से सद्गुणों का नाश होता है दशवैकालिक सूत्र में इस प्रकार फरमाया है—

कोहो पिईपणासेइ । माणो विणयनासणो ॥ माया मित्ताणिनासेइ । लोहो सव्वविणासणो ॥ १ ॥

भावर्थ—क्रोध चिरन्तन प्रीतिका नाश करता है, मान विनय गुण का ध्वंश करता है, माया परम

मित्रता का निकन्दन करती है और लोभ सर्व इष्ट गुणों का प्रणाश करता है; अतः इन चारों दुष्ट संपरायों का (कषायों का) सर्वथा परिहार कर देना चाहिये.

अब श्रावकों के विशेष द्वार प्रकाशित करते हैं—

इस पर्व में श्रावकों को शान्तिपूर्वक सामायिक करना चाहिये; सामायिक का स्वरूप इस प्रकार है:—

समता सर्वभूतेषु । संयमः शुभभावना ॥ आर्तरौद्रपरित्याग-स्तद्धि सामायिकं व्रतम् ॥ १ ॥
दिवसे दिवसे लक्खं । देइ सुवण्णस्स खंडियं एगो ॥ एगो पुण सामाइयं । करेइ न पहुप्पए तस्स ॥ २ ॥

भावार्थ—जिसमें सर्व जीवों पर समता भाव हो, संयम और शुभ भावना हो तथा आर्त्तरौद्र ध्यान का परित्याग हो; वह निश्चय से सामायिक व्रत कहा जाता है. १—एक जन प्रतिदिन लाख सुवर्ण खंडि दान करता है और एक पुरुष दररोज़ सामायिक करता है तो इस की बराबरी में वह नहीं पहुँच सकता. २—अतः भव्यात्मा को अहर्निश सामायिक करना चाहिये.

आदि पद से पौषध का ग्रहण करना; उस का फल इस कदर है—

पोसहि य सुहे भावे । असुहाइं खवेइ नत्थि संदेहो ॥ छिदइ निरिय तिरिय गइ । पोसह विहेइ अप्पमत्तेणं

भावार्थ—यह बात निःशंक है कि पौषधग्राही यदि अप्रमत्त होकर शुभ भाव से पौषध करे तो उस के समस्त अशुभ नाश हो जाते है, और नरक तथा तिर्यंच इन दोनों गतियो का विच्छेद हो जाता है, यानी सद्गति का पात्र बनजाता है, इस लिये पर्व दिवसो में उपवास से पौषध व्रत अवश्य आचरना चाहिये



पौषध धर्म के करने की सामर्थ्य नहीं होने पर इस पर्व मे श्रावकों को परमात्मा की द्रव्य और भाव पूजन करनी चाहिये; प्रभुपूजा का फल इस प्रकार कहा है—

सयं पमज्जणे पुण्णं । सहस्सं च विलेवणे ॥ सयसाहस्सिया माला । अणंतं गीयवाइयं ॥ १ ॥

भावार्थ—जिनेंद्रप्रतिमा को प्रमार्जन करने से सौ गुना, विलेपन से हजार गुना, पुष्पमाल पहनाने से लाख गुना और गीत–गान वाजिंत्र से यानी भक्ति से अनन्त गुना पुण्य फल मिलता है—भावप्रधान की

अपेक्षा से इस ठिकाने पुण्य फल का अर्थ ' उपवास फल ' करना इष्ट है—आवश्यक निर्युक्ति में द्रव्यपूजा का फल ' संसारपरित्त ' कहा है.

मन—वचन और काया की परम शुद्धि से स्नात्रपूजा वगैरः का विधान करना घटित है; इस वख्त तीन प्रकार की अवस्था भानी चाहिये. तद्यथा—

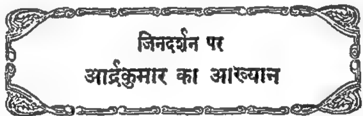
न्हवणच्चणेहिं छउमत्थ । वत्थ पड़िहारगेहिं केवलियं ॥ पलियं कुसग्गोहिय । जिणस्स भाविज्ज सिद्धत्तं ॥ २ ॥

भावार्थ—प्रक्षाल और विलेपन पूजा के—समय पहली छद्मस्थअवस्था, चैत्यवंदन करते वख्त छत्र—चामरादि प्रातिहार्य युक्त दूसरी कैवल्यअवस्था तथा पद्मासन रूप काउसग्ग के समय जिनेश्वरदेव की तीसरी सिद्धावस्था भानी चाहिये.

द्रव्य पूजा की सामग्री का संयोग न होने पर मात्र भावपूजन ही करना समुचित है—प्रातःकाल में जिनेश्वर के मन्दिर में जाकर शुद्ध भाव पुरस्सर परमात्मा के दर्शन करना और भगवन्मुद्रा देखकर उन के गुणग्राम गाना चाहिये; इस पवित्र करणी का फल इस प्रकार है—

दर्शनाद् दुरितध्वंसी । वन्दनाद्वाँच्छितप्रदः ॥ पूजनात्पूरकः श्रीणां । जिनः साक्षात् सुरद्रुमः ॥ १ ॥

भावार्थ—दर्शन करने से परमात्मा पाप का नाश करते हैं, वन्दन से वाँछित फल प्रदान करते हैं, पूजन से लक्ष्मीभंडार पूरते हैं, अतएव जिनेश्वरदेव साक्षात् कल्पवृक्ष हैं × देवाधिदेव के दर्शन करने से अनेक जीवों को बोधवीज की प्राप्ति हुई है यहा पर आर्द्रकुमार का भव्य दृष्टान्त प्रकाशित करते हैं—



जिनदर्शन पर आर्द्रकुमार का आख्यान

इस ही भरतक्षेत्र के अन्दर समुद्र के किनारे आर्द्रक यवन देशान्तरगत आर्द्रक संज्ञक एक नगर था, वहां आर्द्रक राजा राज्य करता था, उस के आर्द्रिका पट्टरानी थी और आर्द्रक नाम का एक पुत्र था; वह

× यह विषय अनुपम निमित्तकारणमें घटित करना चाहिये

क्रमशः यौवन अवस्था को प्राप्त होकर स्वेच्छापूर्वक सुन्दर भोगों का आसेवन करता हुवा सानन्द निवास करता था—आर्द्रक राजा और श्रेणिक महाराज के परस्पर परंपरागत अत्यन्त प्रीति थी, एक वख्त श्रेणिक नृप का भेजा हुवा मन्त्री बहुतसा भेटना लेकर यहां आया, आर्द्र भूपतिने सहर्ष स्वीकारकर अपने बंधु श्रेणिक के कुशल समाचार पूछे, प्रधान ने वहां के आनन्दमय सर्व वृतान्त कहकर अपने नृपेन्द्र की तरफ से बहुतर कुशल पूछा; सुनकर राजा परम आनन्दित हुवा.

इस समय समीप में बैठे हुवे आर्द्रकुमार ने प्रश्न किया—हे पिताश्री! वे श्रेणिक कौन हैं? जिन के साथ आपका इस कदर प्रेम है; राजा ने कहा—प्यारे तनुज! मगध देशाधिपति राजग्रही नगरी के नृपेन्द्र हैं, इन के और हमारे कुलपरंपरागत मैत्री सम्बंध है! यह सुनकर कुमार ने कहा—मन्त्रीराज! तुमारे राजा के क्या कोइ ऐसा सुयोग्य गुणवान पुत्र है कि जिस के साथ मित्रता करने की मेरी इच्छा पूर्ण हो? दिवान ने उत्तर दिया—हमारे महाराजा के एक अभयकुमार नाम के पुत्र हैं, वे सकल कला निधान और सर्व बुद्धि के सागर हैं तथा महा दयावान्, महादानेश्वरी, अतिदक्ष, निर्भय, धर्मवेत्ता, कृतज्ञ और गुणों के

भडार हैं; पाच सौ मन्त्रियों के ऊपर महाअमात्य पद का आधिपत्य भोगते हैं, अधिक क्या कहुँ! जगत में एक भी विशिष्ट गुण ऐसा नहीं है कि जिस ने उन में वास न किया हो, अर्थात् सर्व गुण सम्पन्न हैं, यह अद्भुत हकिकत श्रवणकर सहृदय आर्द्रकुमार पिताजी की आज्ञा लेकर मिष्टवाणी से बोला—प्रधानजी! तुम मेरे विना पूछे अपने देश में मत जाना, जाते समय स्नेह रूप तरुवर के बीज स्वरूप मेरे नम्र वचन अभयकुमार के लिये लेते जाना, मन्त्री ने इस बातको स्वीकार किया और राजा से विसर्जित होकर चपरासी के दिखाये हुवे निवास-भुवन मे चला गया.

कितनेक दिन के पीछे आर्द्रक राजा ने उत्तम मोति वगैरा का भेटना तैयार करके मगध—मत्री के साथ अपना एक प्रतिष्ठित पुरुष भेजा तथा आर्द्रकुमार ने परवाले—मोति प्रमुख उत्तम चीजो की भेट अभयकुमार के लिये मत्री के हाथ दी और मित्रता करने का नम्र निवेदन भी भेजा, अनुक्रम से राजगृही नगरी में आकर यथा अवस्थित भेटना दे दिया और आर्द्रकुमार का शुभ सदेश अभयकुमार को विदित किया, तब जिनशासन में कुशल अभय मत्रीश्वर इस प्रकार विचार करने लगे-निश्चय यह कुमार किसी

पूर्व भव में चारित्र की विराधना करने के हेतु इस भव में अनार्य देश में उत्पन्न हुवा मालुम होता है; परन्तु यह राजपुत्र अवश्य आसन्न भव्य (निकट मोक्षगामी) होना चाहिये: कारण कि अभव्य और दूरभव्य तो मेरे साथ मित्रता करने की इच्छा ही नहीं रख सकते; अतः इस को इस उपायसे (निम्नाङ्कित) जिन धर्म का प्रेमी बनाना समुचित है—

भेटने के बाहने कुमार को आर्हत् प्रतिमा भेजूं और उन के दर्शन करने से जो उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो तो सर्व कार्य सिद्ध हो जाय, यह निश्चयकर–छत्र सिंहासनादि से विराजित प्रथम जिनेश्वर श्री आदिनाथप्रभु की प्रतिमा + एक सुन्दर मंजुषा (पेटी) में पधरा कर उस के सन्मुख धूपदान–घाटिका प्रमुख सकल देवपूजा के उपगरण रखे, पीछे उस को ताला देकर अभयकुमार ने अपनी मुद्रा से मुद्रित करदी–कितनेक रोज़ के बाद श्रेणिक महाराज ने उस आर्द्रदेश–पुरुष को प्रिय वचनपूर्वक भेटना देकर

+ यहां पर कितनेक लोगों का यह वाद है कि जिनप्रतिमा नहीं भेजी गई थी; किन्तु (ओघा–मुहपति) भेजी थी, तो उन महाशयों से निवेदन है कि आप 'सुयगडाङ्गजी' वगैरः की टीका निष्पक्ष बुद्धि से अवलोकन करियेगा; जिस से आप का भ्रम अवश्य निर्मूल हो जायगा.

रवाना किया, अभयकुमार ने भी सत्कारकर वह पेटी अर्पण की और अमृततुल्य इस प्रकार वचन कहे— " मेरे बंधु आर्द्रकुमार को यह मंजुषा समर्पणकर निवेदन करना कि तुम अकेले ही एकान्त स्थान में जाकर इसे खोलना और इस रही हुइ वस्तु सिर्फ तुम ही देखना, अन्य को दिखाना नहीं, " तब उस पुरुष ने अपने देश में आकर नृपति तथा कुमार को अपना २ भेटना भेट कर दिया और अभयकुमार का संदेशा आर्द्रकुमार को सुना दिया—कुमार अत्यन्त हर्षित होकर एकान्त स्थल में उस पेटिका को खोली, उस में विराजित दिव्यउद्योतकारिणी श्रीऋषभदेवस्वामी की प्रतिमा देखकर हृदय मे विचारने लगा— " अहो ! क्या यह कोइ देहका आभूषण है ? या मस्तक का, कंठ का, किंवा हृदय का अलंकार है ? कहीं न कहीं मैंने यह वस्तु देखी हो ऐसा प्रतिभास होता है, मगर बराबर याद नहीं आता " इस तरह इहापुहा (आमर्श—प—रामर्श) करते हुवे ज्ञानोत्पादि का मूर्च्छा प्राप्त हुई और तत्काल जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुवा; राजकुंवर अब सचेत होकर अपना पूर्वभव इस प्रकार साक्षात् कार करने लगा.—

इस भव से तीसरे भव का जिक्र है कि मगधदेश के अन्दर वसन्तपुर नगर मे मैं एक सामाजिक

नाम का कुटुम्बी था और बंधुमती नाम की मेरी एक स्त्री थी, एक वख्त सुस्थिताचार्य के पास से आर्हद्धर्म श्रवण किया और संसार से विरक्त होकर दोनों ने दीक्षा ग्रहण करली; क्रमशः मैं गुरुमहाराज के साथ विहार करता २ किसी एक शहर में आया, बंधुमती साध्वी भी अन्य साध्वियों के साथ उस ही नगर में आचड़ी, उसे देखकर मुझे पूर्वक्रीड़ित भोग-विलास स्मरण हो आये; अत मैंने यह बात एक साधुको कही, उस ने प्रवर्तिनी को विदित की, उस ने भी शिष्टाचार से बंधुमती को ज्ञापन की; सुनते ही आर्या के रोमाञ्च खड़े होगये, तदपि धैर्य को धारणकर अपनी महत्तरा से प्रार्थना की—हे भगवति! यदि ये गीतार्थ भी मर्यादा उलंघन करें तो फिर क्या दशा होगी? मोहवश अब ये मेरा पीछा नहीं छोड़ सकेंगे; इस वास्ते शील-रक्षा के लिये मुझे अनशन (निर्भोज्यतप) कर लेना श्रेष्ठ है! गुरुवर्या की आज्ञा लेकर तपस्याद्वारा अपने प्राण विसर्जन कर दिये—"धन्य! महासती क्षण-भंगुर देहका त्यागकर स्वर्गवास में उत्पन्न हुई," उस का मरण सुनकर अपनी आत्मा को धिक्कारता हुवा मैं भी अनशन करके देव लोक में प्राप्त हुवा; वहाँ से च्यवकर धर्महीन अनार्य देश में उत्पन्न हुवा—इस वख्त मेरा प्रतिबोधक मेरा बंधु

और मेरा गुरु अभयकुमार ही है, मगर अब तक मेरे कमनसीब हैं कि उन उपकारी के दर्शन करने को मैं असमर्थ हूँ—अब मैं ऐसा करू कि पिताश्री की आज्ञा लेकर आर्यदेश मे मेरे गुरु अभयकुमार के पास जाउं ? इस प्रकार नानाविध मनोरथो में लीन होकर प्रभुप्रतिमा की भक्ति पूर्वक पूजा करता हुवा सानन्द समय व्यतीत करने लगा.

एक वख्त कुमार ने अपने पिताजी से प्रार्थना की कि हे तात ! मैं अपने मित्र अभयकुमार को देखना चाहता हूँ ? राजा ने कहा–वत्स ! वहाँ जाने की तूँ इच्छा न कर, मेरे और श्रेणिक के भी स्थानिक मित्रता है, तव पिताकी आज्ञा मे अवरोधित और अभयकुमार का परिचय करने मे उत्कठित आर्द्रकुमार न तो जा सकता था और न रह सकता था, तव कुमार बैठते, ऊठते, हर वख्त अभयकुमार की दिशा तरफ देखता रहता और यह विचार करता–अहो ! मगध देश कैसा होगा ? राजगृही नगरी कैसी होगी ? वहाँ जाने का कौन मार्ग है ? इत्यादि समीपवर्त्ती लोगों को पूछा करता था, इस समय राजा सोच ने लगा " कदाचित मुझे विना पूछे ही कुमार स्नेहवश अभय के पास चलाजाय; अतः कुछ प्रबध करना चाहिये "

यह निश्चय कर नृपति ने ५०० सुभट उस के नज़रशानि के लिये रक्खे और उन को यह हुकुम दिया कि "तुम पूर्ण सावधानी से खयाल रखना राजकुमार परदेश न चला जाय" अब सामन्त लोग 'देहछायावत्' साथ रहने लगे; "मेरे पर सख्त पहरा रक्खा गया है, इसलिये यहाँ कुछ युक्तिवाद करना पड़ेगा" यह खयालकर कुमार हमेशां अश्वारूढ होकर शाम–सुबह हवाखोरी करने जाने लगा, तब तमाम अंगरक्षक भी इस ही तरह साथ चलने लगे; कुमार विश्वास बड़ाने के लिये दस–बीस कदम आगे बढ जाता और फिर सामिल हो जाता, इस कदर क्रमशः रफ्त डाला; इधर खानगी तौरपर अपने विश्वासपात्र द्वारा एक जहाज़ तैयार कराया और उस में रत्न वगैरा द्रव्य संग्रहकर प्रभुप्रातिमाजी स्थापन करारक्खी–एक दिन अवसर देखकर कुँवर बहुत आगे बढगया और समुद्रकिनारे शीघ्र ही उपरोक्त जहाज़ में बैठकर आर्यदेश को रवाना होगया.

नौका से आर्यदेश के किनारे उतरकर आर्हत्प्रतिमा तो अभयकुमार को भेजदी और अपना सब द्रव्य सात क्षेत्रों में × लगाकर स्वयं यतिवेश धारण कर लिया, सामायिक उच्चरते समय देववाणी हुइ कि

" यद्यपि तुम महान् समर्थ हो तदपि अभी दीक्षा मत लो; कारण कि अब तक तुमारे भोगावली कर्म मौजुद हैं, उन्हें भोगकर फिर व्रत ग्रहण करना, भोग्यकर्म तीर्थंकरों को भी अवश्य भोग ने पड़ते हैं, वास्ते हे महात्मन्! तुमारे व्रत को रहने दो, लेकर त्यागना पडे उस से न लेना ही अधिक अच्छा है, वह भोजन ही किस कामका कि जिसे खाकर वमना पडे "। इत्यादि बहुतेरा निषेध किया; मगर आर्द्रकुमार ने भाविफल को न पहिचानकर अपने प्रौढ पराक्रम से दीक्षा अंगीकार करली, वे प्रत्येकबुद्ध मुनि तीक्ष्णव्रत पालते हुवे भूमंडलपर विचरने लगे, इस तरह एकदा वसन्तपुर नगर में किसी देवकुल मे आकर काउसग्ग ध्यान में खडे हुए थे

इधर इस ही नगर के अन्दर देवदत्त नाम का एक महर्द्धिक सेठ निवास करता था, उस के धनवती नाम की एक भार्या थी, एक समय वह बधुमतीका जीव स्वर्ग लोक से च्यवकर सेठ के यहाँ अद्भुत रूपवती पुत्रीरूप अवतरा, नाम ' श्रीमती ' रख्खा गया, धायमाता से पालन होती हुई रज.- क्रीड़ा के योग्य

× (१) साधु (२) साध्वी (३) श्रावक (४) श्राविका (५) जिन मन्दिर (६) प्रभुप्रतिमा (७) ज्ञान

वय में पहुँची. एक समय नगर की कन्याओं के साथ पतिवरने का खेल खेलने श्रीमती उस ही देवमन्दिर में पहुँची कि जहां आर्द्रमुनि ध्यान में खड़े हैं; तमाम बालिकाओं ने अपनी २ मरजी के अनुसार वर कायम किये; किन्तु श्रीमती ने तो कहा कि मैंने तो इन पूज्य को वरे; वस इस ही वख्त देववाणी हुई 'साधुवृतं—साधुवृतं' इस तरह कहकर रत्नों की वर्षा की, बाद आकाश में गर्जारव हुवा, इस से भयभीत होकर श्रेष्ठीकन्या ने ध्यानस्थ मुनि का पादस्पर्श किया, साधु महाराज चौंके और विचार करने लगे कि यहां पर मुझे अनुकूल उपसर्ग * हुवा; अतः अब इधर रहना मुनासिब नहीं, ऐसा ख्यालकर तुरन्त विहार करगये.

स्वामीरहित धन का मालिक राजा होता है, इस लोकोक्ति के अनुसार उन रत्नों को लेने राजा अपने सेवकों सहित देवभुवनपर आया, सेठ वगैरः अन्य लोग भी अच्छी संख्या में साथ थे, राजपुरुष रत्नों के स्थानपर सर्पसमूह देखने लगे; इस समय देवता ने कहा—अहो लोगों ! यह धन मैंने श्रीमती के

* रागजन्म उपसर्ग 'अनुकूल-उपसर्ग' कहाजाता है.

विवाह के लिये दिया है, राजा खाली हाथ और सेठ द्रव्य लेकर अपने मकानपर चला गया—अब कितनेक काल पीछे श्रेष्ठी ने कन्या के लिये अनेक वरों की योजना की, यह बात जानकर पुत्री ने पिता को भाविसुख के लिये स्पष्ट कह दिया कि—हे तात! मैंने तो उस दिन उन महर्षिको वर लिये हैं; अतः अन्य वर नहीं हो सकता और आपने तत्सम्बधी धन लेलिया है, इसलिये आप की अनुमति भी सिद्ध होती है, वास्ते अन्य प्रयासों का त्याग कर दीजियेगा, उत्तम कार्य सम्बध तो एक ही वार होता है; देखिये कहा है:—

सकृज्जल्पन्ति राजानः। सकृज्जल्पन्ति साधवः॥ सकृत्कन्याः प्रदीयन्ते। त्रीण्येतानि सकृत् सकृत्॥ १॥

भावार्थ—राजाजन एकवार बोलते हैं, और मुनिजन भी एक ही वार वदते हैं, अर्थात् उच्चरित वचन को नहीं बदलते, इस ही तरह कन्या भी एक ही वार दी जाती है, मतलब कि ये तीनों विपय एक से अधिक वार नहीं किये जा सकते

यह सुनकर सेठ बोला—वे तो भँवरे की तरह घूमते रहते हैं, कुछ एक ज़गह उन का नियत स्थान नहीं, तो उन्हें कैसे प्राप्त कर सकेगे? यहाँ आवें या न आवें और कदाच आवे भी तो उन्हें कैसे पहिचान

सकते हैं ? श्रीमती ने उत्तर दिया–उस दिन गर्जना के समय मैंने उन के चरणस्पर्श करते कुछ निशान जान लिये हैं; इसलिये हे पिताजी ! आप ऐसा प्रबंध कर दीजिये कि आते जाते सब साधुओं के मैं दर्शन कर सकुं ! श्रेष्ठी बोला–इस नगर में जो कोइ महर्षि आवें उन्हें तूं भिक्षा दिया कर, जिस से सब सन्तों के दर्शन होंगे और अपना कार्य भी सिद्ध होगा; कन्या हमेशां इस प्रकार करने लगी; पाद–लक्षण पहिचानने के लिये प्रत्येक मुनि के चरणसरोज में झुककर वंदन करती थी.

बारह वर्ष में वे मुनिराज दिशा भूलकर इस नगर में आ चड़े, श्रीमती चरण–लक्षण पहिचान कर प्रार्थना करने लगी–" हे नाथ ! देवमन्दिर में मैंने जो वर वरा था, वह तुम ही हो, मेरे सद्भाग्य से मुझे पुनः प्राप्त हुवे हो–हे स्वामिन् ! मुझ बालाको छोड़कर आप कहाँ चले गये थे ? जिस दिन से आप मेरी दृष्टि के बहार हुवे उस दिन से आज पर्यन्त मैंने कष्ट से अपने दिन बिताये हैं; अतः अब अनुग्रह करके मुझे अङ्गीकार करो ! इतना कहने पर भी यदि मुझे न स्वीकारोगे तो मैं अग्नि प्रवेश करके तुमारे

शिरपर स्त्रीहत्या का महत्पाप चडाउगी ! वास्ते दया लाकर मुझे ग्रहण करो ” इस वख्त श्रीमती के पिता
वगैर. भी आकर विवाह की प्रार्थना करने लगे—

इस धर्म सकट के समय आर्द्रकुमार राजर्षिको देववचन स्मरण हुवे और आखीर लाचार होकर
श्रीमती के साथ लग्न किये, क्रमशः इन्हें एक पुत्र की आप्ति हुई, बालक राज–शुक की तरह मन्मन्मधुर
भाषा बोलने लगा, पिताजी वत्सकी देखकर अतिहर्षित हुवे, इस तरह लडके की उम्र वढने लगी,
आर्द्रकुमार ने एक दिन अपनी पत्निको कहा–प्रिये ! अब पीछे से यह पुत्र तेरा पालन करेगा और मैं पुनः
दीक्षा लेकर अपने कर्म–शत्रुओं को क्षय करू ? परन्तु ससारवासना में आसक्त श्रीमती को यह बात
पसन्द न पडी, इस वास्ते उस ने अपने पतिदेव को रोकने का एक सुन्दर प्रयोग किया—

अपने पुत्र को समय सूचन करने के लिये ‘ रेंटिया ’ लेकर श्रीमती सूत कातने बैठी, बालक ने
पूछा—हे मात ! गरीब लोगो की तरह आप यह क्या व्यवसाय करती हो ? जननी ने उत्तर दिया हे पुत्र !
अपन दोनों को छोडकर तेरे पिताजी दीक्षा लेजाने वाले हैं तो निराधार पतिहीन मुझे यह रेंटिया ही

शरण है, गरीबों की भूख और इज्जतदारों की आबरू रखनेवाला यह एक परम आधार है; माता के इन दुःखित शब्दों को सुनकर शिशु स्नेहशब्दों से बोलने लगा–ला यह सूत ? मैं अपने पिता को बांध देता हूँ, फिर कैसे जा सकेंगे ? बस तुरन्त ही प्रेमालाप करता हुवा सोये हुवे जनक के दोनों पेर बांध दिये, आर्द्रकुमार स्नेहमुग्ध होकर बोला—मेरे प्यारे पुत्र ! तंतुओं के जितने बंधन होंगे उतने वर्ष तक मैं तेरी खातिर गृहस्थाश्रम में और रहूँगा—गिनती की तो बारह आंटे निकले, बस राजकुमार बारह वर्ष पुनः घर में रहे.

प्रतिज्ञा पूर्ण होने के पश्चात् रात्री के पीछले पहर में वैराग्यपूर्ण होकर आर्द्रकुमार विचारने लगे—मैंने पूर्व भव में मात्र मन से व्रत तोड़ा था जिस से अनार्य देश में उत्पन्न हुवा और इस भव में तो तीनों योगों से व्रत खण्डित किया है तो मुझ पामर की क्या गति होगी ? अस्तु; अब भी पुनः प्रव्रज्या लेकर उग्र तपस्याद्वारा अपने आत्मा का शोधन करूँगा; ऐसा दृढ निश्चयकर प्रातः काल में श्रीमती और पुत्र की अनुमति लेकर साधुवेश परिधान किया और निर्ममत्व होकर घर से प्रयाण करगये.

राजगृही के रास्ते में चौरवृत्ति करते हुवे मुनि ने अपने पांच सौ सामंतों को देखे, उन सब ने राजर्षि को पहिचानकर भक्तिपूर्वक वदन किये, मुनि ने धर्म आशिर्वाद (धर्मलाभ) देकर कहा—अहो! तुमने महा पापमय यह वृत्ति क्यों आदरी है? उन्हने जवाब दिया—स्वामिन्! आप हमें ठगकर जब से चले गये तब से हमने लज्जावश महाराजा को मुख न दिखलाया और इस अधम धंधे से अपना गुजरान करते हैं; महात्माने सक्षेप से उपदेश किया—"महानुभावों! तुमने अयोग्य किया किसी महा पुण्य के योग से यह मनुष्य भव मिला है; अतः हिंसादि पापों का त्याग कर स्वर्ग—मोक्ष के दातार वीतराग धर्म को स्वीकार करो;" पहिले की तरह तुम मुझे अपना स्वामी मानकर मेरा मार्ग अंगीकार करो! यह सुनकर सब ही लोग एक ही अवाज बोल उठे—पहिले आप हमारे मालिक थे अब हमारे परमपूज्य गुरु बनो और हमें दीक्षा प्रदान करो? यह हमारी नम्र याचना है आद्रकुमार राजर्षि ने पांच सौ चौरों को दीक्षा देकर उन का जीवन पावन किया, संभव है कि—जगल में शासन देवने 'वेश' अर्पण किये होंगे—अब महर्षि मुनीश्वर गुथाधिपति होकर जगद्गुरु श्रीमहावीर परमात्मा के दर्शनार्थ चले—मार्ग से गोशाला मिला, आपुस में

विवाद होने लगा इस समय हज़ारों देवता और मनुष्य कौतुक देखने के लिये प्राप्त हुवे; चर्चाने इस प्रकार रूप धारण किया—

गौशाला बोला—तुमारा तपादि कष्ट व्यर्थ है शुभाशुभ फल का हेतु नियति (भावी) है; इसलिये नीरर्थक वाद तुम्हें छोड़ देना चाहिये.

मुनिराज ने उत्तर दिया–तेरा मानना भ्रान्तिमूलक है; जो तूँ भावी को ही स्वीकारता हो तो इष्टसिद्धि के लिये सर्व क्रियाएँ अनर्थक ठहरेगी–हे नियतिवादिन् ! हरवख्त एक स्थान पर क्यों बेठा नहीं रहता ? भोजनादि के समय आहारादि के लिये क्यों उद्यम करता है ? मतलब कि नियति के समान पुरुषार्थ भी साधु मार्ग है, इतना ही नहीं किन्तु अर्थसिद्धि में भावी से उद्यम बलवान् है; जैसे–आकाश से नियतिवशात् पानी गिरता है; वैसे ही पुरुषार्थ से ज़मीन खोदकर पाताल से पानी निकाला जाता है; सारांश यह है कि नियति कुछ पृथक् चीज़ नहीं है, बल्कि 'पूर्व पुरुषार्थ को ही नियति कहते' हैं; इस से यह

सिद्ध हुवा कि 'नियतेरपि पौरुष बलीय.' बस विवाद पूरा हुवा, गोशाला निरुत्तर हो गया, खेचर वगैरः सर्व ने मुनीश्वर का जयघोष किया

वहाँ से मुनिवर आगे बडे, क्रमशः तापसों के एक आश्रम पर आपहुँचे, इनकी ऐसी मान्यता थी कि एक मोटे ताजे जानवर को मारकर बहुत दिन तक निर्वाह करना अच्छा है; मगर मृग–तीतर–माछले धान्य वगैरा भक्षण करने से नाना जीवों का नाश होता है, यह महत्पाप है; अतएव इन तापसों ने वध करने के लिये एक जबरदस्त हाथी आश्रम पर बाध रक्खा था–पांचसौ मुनियों सहित आर्द्रकुमार महर्षि को सहस्रस. लोग वदन करते हुवे देखकर हलुकर्मी हस्ति विचार करने लगा–"यदि मैं बधन से बंधा हुवा न होता तो मैं भी इन महामुनि को वदन कर अपना जीवन पावन करता, मगर क्या करूं? लाचार हूं!" इस तरह खेद करता हुवा मुनिराज के प्रति देखने लगा, बस दर्शन करते ही सांकल टूट पड़ी और गजराज महात्मा के नजीक आने लगा, इस वख्त सब लोग अहो! मुनीश्वर को मारा–मारा!! इस प्रकार हाहाकार करने लगे और चारों तरफ भागने लगे, मुनिपुंगव तो वहीं निश्चल खड़े रहे,

हाथी ने अपने कुंभस्थल को नीचे झुकाकर नमन किया और अपनी शुण्ड से वारंवार मुनिश्री के पाद स्पर्शकर सुखी हुवा; पश्चात् उठकर वहाँ से निराकुलपने अरण्य में चला गया; इस महा प्रभाव को देखकर उग्रकोपित तापस लोग प्रतिबोध को प्राप्त हुवे और मुनिवर की आज्ञानुसार जगदीश्वर श्रीमहावीरदेव के पास जाकर उन ने भवतारणी दीक्षा अंगीकार की.

हाथी की मुक्तता और तापसों का उद्धार सुनकर अभयकुमार सहित श्रेणिक नरेन्द्र वहाँपर आये, मुनीश्वर को भक्तिपुरस्सर वंदनकर नम्रता से पूछने लगे–हे भगवन् ! हास्ति के छुड़ादेने का मुझे बड़ा आश्चर्य है ? महात्मा ने कहा–राजन् ! हाथी का मोक्ष कठिन नहीं; मगर कच्चे सूत के तन्तुओं से मुक्त होना मुझे अतिदुष्कर मालूम हुआ—राजेन्द्र ने पूछा–प्रभो ! यह बात कैसे ? तब राजर्षि ने अपनी समस्त आत्म-कथा कह सुनाई.

आर्द्रराजर्षि अभयकुमार के प्रति कहने लगे--हे महाभाग ! तुम मेरे निष्कारण उपकारी बंधु हुवे, हे परममित्र ! तुमारी भेजी हुई अरिहन्त-प्रतिमा के दर्शन से मुझे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा;

इस प्रकार के उत्तम उपाय विना मुझे पवित्र जैनधर्म की प्राप्ति कहां से होती? अनार्यपन के महा कीच में फँसे हुवे मुझको तुमने उगारा, तुमारे ही प्रताप से मुझे भवतारक चारित्र मिला, इत्यादि उपकार मानने लगे–श्रेणिक, अभय वगैरा तमाम हर्षित हुवे और आखीर महर्षि को नमनकर अपने २ स्थान पर चले गये–आर्द्रकुमार मुनीश्वर राजगृही के समीप समवसरे हुवे देवाधिदेव भगवान् श्री महावीरदेव की सेवामें पहुँचे, भक्तिपूर्वक वदन–नमस्कारकर प्रभुसेवा करने लगे, क्रमशः मोक्ष–पद को प्राप्त हुवे; धन्य हैं! जिन दर्शन के महात्म्य को पुनः २ धन्य है–इसही तरह धर्मोपासको को हमेशां जिनदर्शन करके अपना जीवन कृतार्थ करना चाहिये



इस पर्वाधिराज के आने पर उपवास, छट, अठम आदि तप यथाशक्ति करना परमावश्यक है, यदि कोइ स्नेहवश न करने दे तो भी हिम्मत पुरस्सर अवश्य आचरना चाहिये, प्राणान्त भी इस महापद का त्याग न करना चाहिये; यहाँ सूर्ययश नृपेन्द्र का दृष्टान्त दिखलाते हैं:—

तपस्या की दृढ़ता पर
सूर्ययश नृपेन्द्र का दृष्टान्त.

पूर्व देशान्तरगत अयोध्या नाम की नगरी में खण्डत्रय का भोक्ता, अखण्डशासन कर्त्ता, दुष्ट जन का शिक्षक और शिष्ट जन का पालक तथा राजनीति में प्रवीण; ऐसा एक महा समर्थ, परम धर्मी, सूर्ययशः नाम का राजा राज्य करता था, राज्यासन के समय इन्द्र का भेट किया हुवा बहुमूल्य मुकुट धारण करता था, इस ताज के प्रभाव से देवता लोग भी राजेन्द्र की सेवा बजाते थे; उस के राधावेध की सिद्धि से विवाह की हुई जयश्री नाम की एक पट्टरानी थी; इस के अतिरिक्त कइयक अन्य ललनाएँ भी थी. नृपेन्द्र चार पर्वों में (दो अष्टमी–दो चौदस में) तपस्या सहित पोषध व्रत करता था और अपने जीवन के समान पर्व का आदरपूर्वक आराधन करता था.

किसी एक वख्त सिंहासन पर विराजे हुवे सौधर्मेन्द्र अपने अवधिज्ञान से कुछ जानकर चमत्कृत हुवे और हर्षावेश में आकर शिर धुनाने लगे; निकट में बैठी हुई विश्व-वशीकरण समर्थ उर्वशी ने शिरकम्पन का कारण पूछा ? इन्द्र ने कहा—मैंने इस समय अपने ज्ञान से देखा है कि भरतक्षेत्र में श्रीऋषभदेव प्रभु का पौत्र और भरतचक्रवर्ती का पुत्र, अयोध्या नगरी का अधिपति सूर्ययशः नृपेन्द्र के बराबर कोइ सात्विकाशिरोमणि नहीं है, उस महान् दृढधर्मी को चलायमान करने मे किन्नर लोग भी असमर्थ हैं, चाहे सूर्य पूर्व आशा को छोड़कर पश्चिम मे ऊगने लगे, समुद्र मर्यादा का त्याग करे, मेरुपर्वत कल्पान्त पवन से कम्पने लगे, कल्पवृक्ष निष्फलता धारण करे; मगर अयोध्या का स्वामी प्राणान्त भी अपने स्वीकृत व्रत को नहीं छोड सकता.

यह सुनकर उर्वशी बोली—हे स्वामिन् ! योग्यायोग्य के जाननेवाले आप मनुष्य के निश्चयता की क्या स्तुति करते हैं ? जिस का शरीर सात धातुओं से × उत्पन्न हुवा है और जिन का जीवन अन्न के आश्रित

× १ हाड़ २ मास ३ रुधिर ४ वीर्य ५ मेद ६ नसें ७ त्वचा, ये सात धातुएँ कही जाती हैं

है वह देवों से भी चलायमान नहीं हो सकता, इस बात को कौन मान सकता है? मेरे गान-रस के आगे जगत में कौन अपना विवेक टिका सकता है? वहाँ जाकर शीघ्र ही उसे पतित करती हूँ! ऐसी प्रतिज्ञा करके रंभा सहित उर्वशी हाथ में वीणा लेकर भूमंडल पर अवतरित हुई-अयोध्या के निकटवर्ती उद्यान में श्री ऋषभदेव जिनेश्वर के मन्दिर में अद्भुतरूप धारणकर मस्त राग से गाने लगी, इस चित्ताकर्षक गान से वनवासी पक्षी, मृग, सर्पादि चित्रवत् स्तम्भित होगये, मानो घड़े हुवे पाषाण की तरह निश्चलनेत्र होगये.

इधर सूर्ययशः राजा हवाखोरी करके अपने प्रधान सहित इस ही रास्ते वापिस आरहा था, उर्वशी और रंभा की अत्यन्त मधुर ध्वनी सुनकर हाथी घोड़े-पैदल वग़ैरः आगे कदम न बड़ा सके; इस स्वरूप को जानकर राजा मंत्री के प्रति कहने लगा-संसार में गायन समान कोइ आनन्द नहीं, देखो! पशु भी इस में मोहित होगये हैं, गान से देव-दानव-नृप-ललनाएँ वग़ैरः सर्व वशीभूत हो जाते हैं, तो फिर चलो अपन भी देवालय में चलकर प्रभु के दर्शन का अपूर्व लाभ लें ओर इस सुरिले राग-रस का आस्वादन करें; बश शीघ्र ही दोनों जन प्रभुमन्दिर में दाखल हुए.

वहाँ हाथ में वीणा चलाती हुई, गीत ध्वनी करती हुई रति के सदृश दिव्य सौन्दर्यवाली दो कुमारीकाओं को देखीं, उन के स्नेह–चक्षुओं के कटाक्षों से राजा काम–विव्हल होकर विचार ने लगा– 'अहो ! यह अद्भुत रूप कौन पुण्यशाली के भोगार्थ होगा ' नृपेन्द्र भी उनपर स्नेह चक्षुएँ वारंवार फेंकने लगा, अन्त में प्रभु के चरण–सरोज में नमनकर बाहर आया और प्रधान को कुलादिक जानने के वास्ते तथा समग्र बातचित करने के लिये आदेश किया–तब अमात्य ने उन के नज़ीक में जाकर अमृतमय वाणी से इस प्रकार पूछा–हे कन्याओ ! तुम कौन हो ? तुमारे पति कौन हैं ? तुम यहाँ–पर किस मतलब के लिये आई हुई हो ? इत्यादि सब वृतान्त कह सुनाओ ! उन ने जवाब दिया–हम मणिचूड़ विद्याधर राजा की पुत्रियाँ हैं, बालपन से ही हमें कलाओं में असीम मान है, जब हम युवा अवस्था में प्राप्त हुई तब पिताजी हमारी वरचिन्ता करने लगे, मगर हमारे योग्य कोइ पति उपलब्ध नहीं हुवे, " मनुष्य देह पुनः २ कहाँ से मिल सकता है " ऐसा निश्चयकर हम स्थान २ पर अर्हत् चैत्य को वन्दनकर अपना जन्म

सफल करतीं हैं; यह अयोध्या भी तीर्थभूमि है; अतः भरत महाराज के बनाये हुवे मन्दिर में आदीश्वर भगवान को जुहारने हम यहाँ आई हैं.

समयसूचक मन्त्रीराज ने कहा—तुम अब तक कुमारिका हो तो ऋषभदेव स्वामी के पौत्र भरत चक्रवर्ती के पुत्र, सर्वकला निपुण सौम्यादि सद्गुणालंकृत, महापराक्रमी. सूर्ययशः नाम के हमारे नृपेन्द्र हैं, इस के साथ तुमारा समागम श्रेष्ठ है, तुम को समझना चाहिये कि श्रीआदीश्वर भगवान् तुमपर तुष्टमान हुवे हैं कि अकस्मात् ऐसे सुयोग्य वर मिल गये. प्रधान की बात सुनकर कन्याओं बोली—हम अपने स्वतन्त्र पतिरूप प्रभु को छोड़कर अन्य पति के आश्रय रहना नहीं चांहतीं ! अमात्य ने कहा—हमारा राजेन्द्र तुमारा वचन कदापि उलंघन न करेंगे; अतएव यह स्वाधीन पती ही समझना चाहिये; देवांगनाओं के मनमानी बात बनगई बस तुरन्त ही स्वीकार कर लिया और युगादीश के समक्ष उन का पाणिग्रहण (हस्तामिलन) होगया; राजा और इन में खूब प्रीतिरस जमा; इसलिये अन्य सर्व कार्यों को भूलकर रतिक्रीडा में लयलीन नरेन्द्र अनेक प्रकार के भोग भोगता हुवा सुखपूर्वक काल व्यतीत करने लगा.

एक दिन शायंकाल में अपनी दोनों नूतन भार्याओं के साथ सूर्ययश. राजा महल के गवाक्ष में सानन्द बैठा हुआ था; उस समय आदेशी पुरुष इस प्रकार उद्घोषणा करते हुवे जा रहे थे–" अहो नगर के लोगों ! कल अष्टमी पर्व है, इसलिये कोइ आरंभ–समारंभ × मत करना, किन्तु आदर पूर्वक पर्व का आराधन करना; ऐसा महाराजा साहब का हुकुम है ' यह ढंढेरा सुनकर उन दो कपटमय स्त्रियों में से एक रंभा ने नृपति को सभा का कारण पुछा ? नरेन्द्र ने उत्तर दिया–हे प्रिये ! हमारे दादाश्री ने अष्टमी–चतुर्दशी पर्वदिवस कहे हैं, इस ही तरह अमावस्या, पूर्णिमा और छ. अट्ठाईयाँ, (नवपदजी की दो–चतुर्मासिक की तीन–पर्युषणापर्व की एक) तथा ज्ञानपञ्चमी वगैरः पर्व कहे हैं; इन दिनों में धर्म अनुष्ठान करने से स्वर्ग यावत् मोक्ष का सुख मिलता है, वास्ते घर का समग्रकाम छोड कर धर्मप्रवृत्ति करना चाहिये, इन दिनों में खासकर स्नान, स्त्रीसंग, क्लेश, परहास्य, ईर्षा, क्रोधादि कषायचतुष्टय और प्रमादादि कुछ भी न करना चाहिये तथा प्रियवस्तु पर ममता करना उचित नहीं, किंतु पञ्च परमेष्ठी का ध्यान धरना,

× खांडन-पीसण-प्रक्षालन-कृषिकर्म-भट्टी-वास्तुकर्म वगैर

सामायिक, पौषध, छट–अठमादि तपस्या, जिनपूजा प्रभृति पवित्र करणी करनी चाहिये; इन पर्वों का आराधन करने से मनुष्य निर्मल पुण्य उपार्जन करते हैं, और क्रमशः कर्म क्षयकर मुक्तिललना को वरते हैं; इसलिये हे कान्ते ! सप्तमी और त्रयोदशी के दिन लोगों को ज्ञान करने के लिये मेरे आदेश से यह ढंढेरा पिटवाया जाता है.

राजा के धर्मदर्शक आलाप सुनकर उर्वशी दिल में चमकी मानो अर्धमद गल गया, तो भी माया प्रपंच कर बोलने लगी—हे नाथ ! श्रेष्ठ मनुष्यभव, दिव्यरूप और सुखद राजवैभव; ये सब तप–क्लेश में क्यों जाहोम करते हो ? आनन्द से संसारसुख भोगो ! यह अनुपम देहलता और दिव्यभोग वारंवार कहां से मिल सकते हैं ? इतना कहकर शान्त रही—कानो में तप हुवे सीसे के समान अधम–वचन सुनकर नृपेन्द्र गर्ज उठे—रे धर्मनिन्दके ! मलिन स्वभावे !! रे अधमे !!! तेरी यह वाणी लेशमात्र भी विद्याधर के कुल योग्य–नहीं है, तेरे चातुर्य को तथा तेरे रूप और यौवन को धिक्कार हो ! धर्मकार्य की निन्दा करने वाली तेरे को पुनः २ धिक्कार हो ! अरी ! तूँ जानती है कि मनुष्यभव, सुन्दर रूप आरोग्यदशा, राजऋद्धि

वगैरः सर्व तपस्या से प्राप्त होती हैं, ऐसे उपकारक तप को कौन कृतज्ञ आराधन न करे? जो न आचरे वह कृतघ्न कहा जाता है, धर्म की आचरणा से देह विडम्बित नहीं हो सकता, किन्तु पावन होता है, सच तो यह है कि विषय-सुख से देह का विडम्बना है; अतः यथेच्छ धर्म करना चाहिये, मानवजीवन और साध्य सामग्रियॉ पुन २ कहॉ से मिलसकती हैं?—वत बुद्धिवाले मृग, सिंहादि बालक भी आठम, चौदस को आहार नहीं करते तो मैं एक सुजान होकर किस तरह कर सकता हूँ? उन ज्ञाता का जानपन ही किस काम का कि जो धर्म का प्रधान कारणभूत पर्वाराधन नहीं करते; श्री युगादीश्वर भगवान् ऋषभदेव स्वामी के फरमाये हुवे ये उत्तम पर्व प्राणान्त भी में नहीं छोड़ सकता.

इस तरह क्रोधाकुल नृपेन्द्र के वचन सुनकर मोहमाया रूपजाल को फैलाती हुई उर्वशी पुनः बोलने लगी—हे स्वामिन्! आप की मख्खन सदृश सुन्दर देह को कष्ट मत हो! इसलिये प्रेमवश मैंने प्रार्थना की, इस में क्रोधातुर होने का अवकाश नहीं है, हा! हमारी दशा बड़ी दयाजनक वन गई—पहिले तो हमने पिता के वचन न मानकर स्वतन्त्र राजा को न वरा; इस वख्त कर्मवशात् आप को वरे तो हमारा

संसारसुख और ब्रह्मचर्य दोनों सहसा नष्ट हुवे, यदि कोइ स्वाधीन पति वरा होता तो आनन्दपूर्ण मनोवाँछित मिलता, हा-हा ! अब तो रात-दिन विडम्बना में गुज़ारना पड़ेगा, इस प्रकार कृत्रिम अश्रुपात करती हुई गद् २ कण्ठ से बोली-फिर कुछ याद आने पर हिम्मत पूर्वक कहने लगी-प्राणाधार ! आप अपने वचन को याद करो, श्रीऋषभदेव स्वामी के आगे आपने हमारे अनुकूल चलने की प्रतिज्ञा की है; हमने तो अभी मात्र परीक्षार्थ ही यह सामान्य निवेदन किया है, तहाँ तो आप अपना भान ही भूल गये; अफसोस ! हमारे तो सर्व सुख नाश हुवे, अब हमें अग्निशरण होजाना ही कल्याणभूत है; इतना कहकर शान्त रही.

राजेन्द्र को अपना वचन स्मरण हुवा, तब हताश होकर लाचारी से बोला-हे प्रिये ! पितामह ने जो निर्देश किया और पिताश्रीजी ने जो आचारण किया उस पर्व को एक पुत्र तरीके मैं कैसे नाश कर सकता हूँ ? हे मृगलोचने ! मेरे हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, महेलात, खज़ाना आदि समस्त राज्य तूँ मांगले तो मैं देने के लिये बहुत खुशी हूँ ! परन्तु सुखहर्त्ता और धर्मनाशक अकृत्य करने का मुझे मत कह !

महाराजा के करुणाजनक वचन पर मुसकराकर कोमलवाणी से देवी पुनः बोली–हे प्रभो ! आपका सत्य वचन यही सद्व्रत है, जो प्राणी स्वीकार किये व्रत को विफल करता है, वह पापात्मा पृथ्वी को अपने भार से दुःखी करता है, किन्तु हे नाथ ! जो तुम इतना भी न कर सकते तो समग्र राज्य कैसे दे सकोगे ? आप के खातर तो हमने अपने पिता की सब ऋद्धि छोडी तो फिर अब राज्य से हमे क्या जरूरत है ? वास्ते हे स्वामिन् ! यदि व्रत भंग न कर सकते हो तो अस्तु, हमारी दूसरी मांग यह है कि हमारे नजरों के सामने आदीश्वर भगवान् का मन्दिर जमींनदोस्त करदो !! वज्रपात सदृश शब्द सुनते ही धर्ममूर्ति सूर्ययशः नृपेन्द्र मूर्छित होकर पृथ्वीपट पर गिर पड़ा ! मन्त्रीराज के आदेश से व्याकुल बने हुवे परिवारने राजापर शीतल जल छींटा और पख्ने से ठंडा पवन डाला, इस से राजा शीघ्र ही सावधान हुवा, अपने सामने रंभा सहित उर्वशी को देखते ही अत्यन्त कोपाटोप होकर सिंहवत् गर्जने लगा—रे अधमे ! तेरा आचार और वाणी तेरे कुल की अधमता ज़ाहिर करती है, सच है ! 'आहार जैसी डकार' तूं विद्याधर की पुत्री नहीं, किन्तु चांडालपुत्री मालुम होती है, मैंने माणि की भ्रान्ति से काच का टुकडा स्वीकार लिया,

अरे ! त्रैलोक्यपति–त्रैलोक्य पूजित का देरासर किसी तरह भी कोइ खंडित नहीं कर सकता; हे स्त्रि ! मैं अपने वचन से बंधा हुवा हूँ; अतः मजबूर होकर कहता हूँ कि व्रत भंग और चैत्य विनाश के सिवाय जो चाहे सो तूँ याचना कर ! उर्वशी स्मित हास्यकर बोली—हे नाथ ! अन्य–अन्य शब्द से आपका वचन हटता ही जाता है, अब मैं अन्तिम याचना करतीं हूँ कि–आप स्वयं अपने पुत्र का शिरच्छेद्‌कर शीघ्र मुझे अर्पण करो ! राजा ने विचार कर कहा–हे सुलोचने! मेरा पुत्र मुझ से उत्पन्न हुवा है; वास्ते हम दोनों एक ही गिने जा सकते हैं तो मेरा मस्तक मैं खुशी से तेरे हाथ में सोपता हूँ; ऐसा कहकर राजा अपना मस्तक उतार देनको उद्यमशील हुवा कि तुरन्त देवी ने खंगधारा बांध दी; किन्तु सात्विकता न बांध सकी–नृपेन्द्र विलक्ष वदन होकर नवीन २ शमशेरों से अनुपम प्रयोग करने लगा–इस समय दोनों देवांगनाओं उर्वशी और रंभा ने समझ लिया कि सत्ववान् राजेन्द्र किसी तरह भी न डिग सका; तब अपना निज रूप प्रकट किया और हर्षावेश में आकर नृपेन्द्र की जयघोषणा करने लगीं—

जय त्वं वृषभस्वामी—कुलसागरचन्द्रमा ॥ जय सत्ववतां धुर्यः । जय चक्रीशनन्दनः ॥ १ ॥

भावार्थ—परम पुरुषोत्तम ऋषभदेव स्वामी के कुलरूपी सागर में चन्द्र समान—सत्ववानों में
अग्रगण्य—चक्रवर्ती के पुत्ररत्न—हे सूर्ययश भूपेन्द्र ! तुम सदा जयवन्ता वर्तो

अहो आपका धैर्य ! अहो भवदीय मानसिक दृढता ! अहो आपका धर्मप्रेम ! कहाँ तक कहे प्राणान्त भी आपने अपना निश्चय नहीं छोडा, देवाधिपति इन्द्र महाराज ने अपनी राजसभा में देवताओं के समक्ष आपके अतुल दिव्यगुण की महती प्रशंसा की, मगर इस कथन पर हम श्रद्धा न कर आपको क्षुब्ध करने के लिये भूमंडल पर अवतरीं और अनेक प्रयत्न किये; परन्तु सर्व निष्फल हुवे—हे जगत्प्रभुकुलावतंस ! आपको चलायमान करने में इन्द्र—चन्द्र—नागेन्द्र भी समर्थ नही, यह हमको पूर्ण निर्णय होगया, हे वीरशिरोमणि ! यह पृथ्वी आप सरीखे अद्वितीय रत्न से ही रत्नवती कहलाती है, इस प्रकार जब कि ये दोनो अपूर्व श्लाघा कर रही थीं उस वख्त देवेन्द्र भी वहाँ उपस्थित होगये और जय—जय शब्द करते हुवे कुसुम वृष्टि की— प्रतिज्ञाभ्रष्ट उर्वशी लज्जित होकर इन्द्र के सामने नरनाथ के गुण गाने लगी; इन्द्र भी पृथ्वीपति को मुकुट—

कुंडल–बाजुबंध और हार भेटकर उन दोनों देवांगनाओं सहित स्वर्गलोक में चले गये.

सूर्ययशः अपनी सत्य प्रतिज्ञापर प्रमुदित हुवा और नीति पूर्वक राज्य पालने लगा, धरणीधरने अपने पिता की तरह पृथ्वी को जिनभुवनो से मण्डित की; संघसह यात्राकर अपना जन्म पावन किया, अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्वों का सादर आराधन कर देह की सफलता की, व्रतधारी श्रावकों को प्रीतिभोजन कराता था; भरतेश ने पहिले कांकणी रत्न की रेखात्रय से श्रावकों को शोभित किये थे और फिर सूर्ययशः राजेन्द्र ने सुवर्ण की यज्ञोपवित से भूषित किये, राजेश्वर अतिशय उदार था तथा बहुत पुत्रों का पिता था–ऋषभदेव प्रभु से जैसे ईक्ष्वाकुवंश प्रसिद्ध हुवा वैसे ही सूर्ययशः नरेन्द्र से सूर्यवंश प्रचलित हुवा; जिस में आज भी अनेक राजाओं मौजुद हैं–धर्मपुंज महाराजा सूर्ययशने अपने पिताश्री की तरह रत्नदर्पण में श्रृंगार शोभा की परिस्थिति देखकर संसार की असारता विचारते हुवे लोकाऽलोक प्रकाशक केवलज्ञान उपार्जन किया; पश्चात् अनेक जीवों को धर्मबोध देकर अनन्त सुखप्रद मोक्ष स्थान को प्राप्त किया. धन्य हो! नररत्न हो तो ऐसे ही हो–कहने का परमार्थ यह हैं कि मुमुक्षों को भी इस ही तरह दृढता पूर्वक तप करके अपना श्रेय करना चाहिये.

उपसंहार—धर्मप्रेमियों ! अनेक धर्मकृत्य प्रदर्शक और आदर्श दृष्टान्तों से विभूषित यह पर्युषण व्याख्यान सूत्रित किया है, इस पर लक्षपुरस्सर मननकर अपने जीवन मे उतारना, बस श्रवण का यही परमार्थ है-कल्याणमस्तु सर्वेषाम्.

प्रशस्तिका

सम्वत् नयन हस्त्यङ्क शशि (१९८२) पोषपूर्णिमा सार ॥ कच्छ मांडवी बन्दरे । पूर्ण किया व्याख्यान ॥ १ ॥
सुख भगवान् त्रैलोक्य गुरु । पदपङ्कज आधार ॥ वीरपुत्र आनन्दने । ग्रन्थ रचा हितकार ॥ १ ॥

⊛ दूसरा पर्युषण व्याख्यान सम्पूर्ण ⊛

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



* तीसरा—श्री दीपावलि व्याख्यान. *



विश्वपूज्य आनन्दघन । वर्धमान सुखकन्द ॥ परम भक्ति से मैं नमुं । सद्गुरु पूर्णानन्द ॥ १ ॥
अवलम्बनकर जिन चरण । रचना करूं सुजान ॥ प्रेमपुरस्सर भवि सुनो । दीपावलि आख्यान ॥ २ ॥

विश्ववंद्य, जगदानन्द, परमोपकारी, श्री अरिहन्त देव को अनेकशः नमनकर तथा पूर्णत्यागी, आत्मद्रष्टा, श्री सद्गुरु महाराज को अभिवंदन करके यह धर्मप्रभाकर 'श्री दीपाववलि व्याख्यान' संस्कृत पर से हिन्दी भाषा में निर्माण करता हूँ; मोक्षाभिलाषियो! सावधान होकर एकाग्र चित्त से इस सुदर व्याख्यान को शान्ति पूर्वक श्रवण करना; जिस में मानव जीवन फलितार्थ हो.

मूल-पीठिका

जम्बूद्वीप के अन्दर भरतक्षेत्र के मध्यखण्ड मे मालवदेशान्तरगत अलकापुरी (कुबेरपुरी) समान उजयनी नाम की एक नगरी थी, उस में सूर्यसदृश तेजस्वी, राजगुणसम्पन्न, सम्प्रति राजा राज्य करता था; एक समय पचाचार पालक, छत्तीस गुण विराजित आर्य सुस्थिताचार्य महाराज अपने साधु-समुदाय सहित जीवितस्वामी श्रीमहावीरदेव की प्रतिमा को वदन के लिये पधारे हैं; इस वक्त राजमार्ग पर जाते हुवे आचार्यश्री को देखकर नृपेन्द्र को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा, तव गुरुमहाराज के निकट जाकर वंदन पूर्वक नम्र भाव से पुछने लगा-स्वामिन् ! आप मुझे जानते हैं ? मुनीश्वर ने उत्तर दिया-राजन् ! तुझे कौन न जाने ? अर्थात् सब ही जानते हैं, फिर से राजा ने निवेदन किया-हे ज्ञानसमुद्र ! ज्ञान विशेषता से क्या आप मुझे पहिचानते हो ? सूरीश्वर चमत्कृत हुवे और श्रुतज्ञान के दिव्य उपयोग से लक्षित कर फरमाया-

हे भूपेन्द्र ! पूर्वभव में तूँ मेरा एक वैराग्यवान् शिष्य था, उत्तम दीक्षा के प्रभाव से उत्कर्ष समृद्धिवाला
राजेन्द्र बना, गुरुदेव के वचन सुनकर राजा ने प्रार्थना की—हे प्रभो ! मुझ रंक को राज्य मिला, यह सब
आप ही का प्रताप है; अतः यह राज्य आप ग्रहण करो ताकि मैं ऋणमुक्त होजाउँ ! आचार्य महाराज ने
बड़ी मिष्टता से निराकरण किया—हे निर्मलबुद्धे ! हमको तो अपने शरीर पर भी मूर्च्छा नहीं है तो फिर
राज्य को हम क्या करें ? ये तमाम सुख—सम्पत्ति तेरे पुण्य से प्राप्त हुई हैं; वास्ते हे नरेन्द्र ! पुण्य उपार्जन
में पुनः उद्यमशील बनना, निर्मल सम्यक्त्व को पालन करते हुवे निरन्तर श्री जिनेश्वर देव की पूजन करना
और पंच समिति-समित, तीन गुप्तिगुप्त, सतरह भेद संयम के पालक, बियालीस दोष रहित आहार
गवेषक, भव्य जीवों के उपकारक; ऐसे निर्ग्रन्थ मुनियों की सेवा—भक्ति करते रहना तथा दानादि चतुर्विध
धर्म की आचरणा करना, विशेषकर पर्वदिनों में अवश्य धर्माराधन करना चाहिये; इस तरह परमोपकारी
गुरुदेव का सदुपदेश श्रवण कर नृपति प्रमुदित होकर सविनय पूछने लगा—हे दयार्णव ! जिनशासन में
प्रसिद्ध सम्वत्सरादि पर्व श्रावक लोग आदरपूर्वक मानते हैं; मगर लोकोत्तर दीपावलि पर्व की प्रवृत्ति कहाँ

से हुई? इस पर्व के ऊपर नर–नारियॉं सुन्दर वस्त्र आभूषण पहनते हैं—जानवरों के शींग वगैर. रगते हैं और मकानो का व्हाइटवास × करते हैं तो इस पर्व का ऐसा महात्म्य क्या है? सो अनुग्रह करके प्रकाशित कीजियेगा। तब कृपाके सागर गुरुमहाराज ने अपनी मधुरी वाणी से दीपावलि पर्व का विवेचन इस प्रकार किया—

महावीर देवका संक्षिप्त चरित्र

श्री वर्धमानस्वामी दसवें देवलोक के पुष्पोत्तर विमान से च्यवकर आषाढ शुद ६ के दिन उत्तरा-फाल्गुनी नक्षत्र मे चन्द्रयोग के आने पर क्षत्रीयकुण्ड नगर के अधिपति सिद्धार्थ नृपेन्द्र के घर पर महाराणी

× साफसूफ–रगना–छडना वगैरः

त्रिशला क्षत्रियाणी की रत्नकूक्षि में अवतरित हुवे * उस ही दिन रात्रि में राजललना ने सिंह–गजादि चौदह महास्वप्न देखे, समय पूर्ण होने पर चैत्र शुक्ल १३ की मध्यरात्री में जगदुद्धारक प्रभु का जन्म हुवा; इस वख्त ५६ दिक्कुमारियों के आसन कम्पे, अवधिज्ञान से प्रभु का जन्म जानकर हर्षावेश से सूतिकर्मादि सर्व जन्मकार्य किये; पश्चात् ६४ इन्द्रों के आसन थरहरे, ज्ञान द्वारा जानकर अत्यन्त प्रमुदित हुवे, अपने २ विमान में बैठकर ६३ इन्द्र तो सीधे मेरुशिखर पर चले गये, एक सौधर्मेन्द्र जन्मभुवन में आकर तीन प्रदक्षिणा पूर्वक प्रभु को तथा प्रभु की माता को नमस्कार किया और अवस्वापिनी निद्रा देकर जगज्जननी के पास से आदर पूर्वक प्रभु को मेरुगिरि पर लेगये; वहां भक्तिपुरस्सर स्नात्र–महोत्सव करके वापिस मातेश्वरी के पास रखकर और निद्रासंहरण कर सर्व अपने २ स्थान पर सानन्द चले गये.

जिस दिन से प्रभु गर्भ में पधारें उस दिन से सिद्धार्थराजा धनसे–धान्यसे–सुवर्णसे–रत्नादि से वृद्धि को प्राप्त हुवे; अतः सर्वजन समक्ष बारवें दिन गुणनिष्पन्न 'वर्धमान कुमार' नाम स्थापन किया

* यहां पर संक्षिप्त चरित्र आलेखने से गर्भापहार का निर्देश नहीं किया.

तथा अनन्त बल और धैर्य को देखकर देवताने 'महावीर' नाम कायम किया, भोग समर्थ जानकर युवान अवस्था में पिताजी ने यशोमती नाम की राजकन्या के साथ विवाह कराया, भगवान् के सुपार्श्व काका, नन्दीवर्धन नाम के वडे भाई सुदर्शना वहेन, यशोमती पत्नि और प्रियदर्शना नाम की पुत्री थी–प्रभु ने मातेश्वरी का असीम मोह देखकर गर्भ मे यह अभिग्रह धारण किया था कि मात–पिता के जीतेजीते में दीक्षा न लूंगा, भगवान् के २८ वर्ष की उम्र में जनक–जननी स्वर्गवास हुवे; प्रव्रज्या समय होजाने पर भी ज्येष्ठभ्राता के अत्याग्रह से दो वर्ष अधिक गृहस्थाश्रम में रहे, किन्तु इतना वख्त साधु समान जीवन में गाला, दीक्षा के एक वर्ष पहिले लोकान्तिक देवों ने सूचना रूप प्रार्थना की 'अहो स्वामिन्! धर्मतीर्थ प्रवर्ताओ, प्रभु ने वर्षीदान दिया, आखीर ३० वर्ष की उम्र मे छट तप करके चन्द्रप्रभा नाम की पालखी में बैठ असख्य देव–मनुष्यों के परिवार सहित महदाडम्बर से ज्ञात वनखण्ड में आकर मागसर कृष्णा १० के दिन पिछले पहर में एक देवदुष्य वस्त्र ग्रहण कर एकाकी भवतारणी दीक्षा अगीकार की, तत्काल चौथा मन पर्यव ज्ञान उत्पन्न हुवा; वहाँ से जगत्तारक अन्यत्र विहार कर गये

दूसरे दिन कोल्लाक ग्राम में पधारे, वहाँ बहुल ब्राह्मण के घर पर परमान्न (खीर) का पारणा हुवा, उस समय देवताओं ने साड़ेबारह क्रोड़ सोनैये की वृष्टि की और पांच दिव्य * प्रकट किये; अनन्तर क्रमशः विहार करते हुये भगवान् को गवालिया, चण्डकोशिक सर्प, शूलपाणि यक्ष, संगमदेव, कटपूतना व्यन्तरणी प्रमुख ने बहुतेरे उपसर्ग किये; परन्तु जगदीश्वर ध्यान से जरा भी न चले, मेरुपर्वत की तरह निष्कम्प रहे–परमात्मा महावीर देवने चौमासी–छमासी–दोमासी वगैरः उग्र तपों में (१२) वर्ष और साड़ा छः महिने व्यतीत किये. उस समय जृंभिका ग्राम के नजीक ऋजुवालुका सरिता के किनारे श्यामक कुटुम्बी के क्षेत्र के समीप शालवृक्ष के नीचे गोदुग्ध आसन से विराजित छट तपयुक्त वर्धमान पुरुषोत्तम को वैशाख शुद १० के दिन तीसरी प्रहर में शुक्लध्यान में लीन होते हुवे. चार घातिक कर्मों के क्षय होने पर लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हुवे.

* (१) पुष्पवृष्टि (२) वस्त्रवृष्टि (३) सोनैयावृष्टि (४) अहो दान-महादान की ध्वनी (५) देवदुन्दुभी वाजिंत्र, ये 'पांच दिव्य' कहे जाते हैं.

एकादशी के दिन मध्यपापा नगरी के समीप महासेन उद्यान में अपना तीर्थ प्रवर्ताया यानी चतुर्विध संघ की स्थापना की—इन्द्रादि देवों ने मिलकर समवसरण की रचना की, पश्चात् इन्द्रभूति प्रभृति इग्यारह गणधर वीरप्रभु ने कायम किये, तथैव क्रमश. भगवान् के (१४०००) गौतमादि मुनिजन (३६०००) चन्दनबाला वगैर साध्वीयें (१६९०००) शंख–शतकादि श्रावक और (३१८०००) सुलसा–रेवती प्रमुख श्राविकाएँ हुई

अब प्रभु के चौमासों की संख्या कहते हैं—पहिला १ चौमासा अस्थिग्राम में शूलपाणि यक्ष के आयतन में ३ चम्पानगरी मे १२ विशाला नगरी और वाणीय ग्राम मे १४ राजग्रही के नालन्दे पाडे में ६ मिथिला नगरी मे २ भद्रिका नगर में १ अलभिका नगरी मे १ अनार्य देशमें १ सावत्थी नगरी मे और अन्तिम १ चौमासा मध्यपावापुरी में हस्तिपाल राजा की सभामें हुवा, जगदुपकारी ने अपने आयुष्य की समाप्ति निकट जानकर विश्वोपकारार्थ सोलह प्रहरतक अखण्डधारा देशना दी

पुण्यपाल राजा के—
अष्ट स्वप्न और उन का फल.

प्रभु का अन्तिम समय जानकर पुण्यपाल राजा दर्शन के लिये आया; अतिशय ज्ञानी परमात्मा को वंदनकर अत्यन्त विनय पूर्वक निवेदन किया—हे प्रभो ! आज़ रात्री में मैंने आश्चर्य पूर्ण आठ स्वप्न देखे, उन का फल क्या है ? सो अनुग्रह पुरस्सर फरमान करें—नरेश के स्वप्न और भगन्त के प्रदर्शित फल क्रमशः प्रकाशित करते हैं—

(१) पहिले स्वप्न में नृपेन्द्र ने जीर्ण शाला में रहाहुवा हाथी देखा; उस का फल यह है कि पंचम आरेमें दुःख—दारिद्र्य—रोग—शोक और भय से व्याप्त गृहस्थाश्रम में अत्यन्त आसक्त होकर लोग दुःख को सुख मानेंगे; परन्तु परम सुखदातृ दीक्षा को अंगीकार न करेंगे.

(२) दूसरे स्वप्न में वानर को चपलता करता हुवा देखा, उस का भाव यह है कि भविष्य मे सत्वहीन उन्मत्त जीव ज्ञान–क्रिया का आदर न करेंगे, साधु लोग शिथलाचारी होंगे, दृढव्रत धारी की धर्मशिक्षा पर हँसेगे, जिस तरह कि गामडे के लोग शहरवालों की हँसी करते हैं

(३) तीसरे स्वप्न में क्षीरवृक्ष को कांटों से घिरा हुवा अवलोका; उस का आशय यह है कि ज्ञान–क्रिया मे भक्तिवन्त, जिन शासन की उन्नती कर्त्ता, सात क्षेत्रों मे द्रव्य खर्च करनेवाले शुभ गुणवन्त, चारित्रानुरागी श्रावकों को अहंकारी, गुणसदन मुनियों के द्वेषी, सुसाधुओं की पूजा–सत्कार नहीं सहनेवाले, वेषधारी, दम्भी साधुजन चोतर्फ से घेर लेंगे

(४) चौथे स्वप्न में काग को कुचेष्टा करते हुवे निहाला, उस का सारांश यह है कि मुनिजन अपने गच्छ के ज्ञानवन्त मुनियों पर प्रेम नहीं करेंगे, किन्तु अपने को पंडित मानकर मदाचारी समुदाय में गमन करेंगे, जिस तरह कव्वा स्वच्छ जल से भरी हुई वावको छोडकर गधे पानी में मुह डालता है

(५) पांचवें स्वप्न मे मृतक सिंह भय कराता हुवा देखा, उस का फल यह है कि दिव्यज्ञान रहित

जैन दर्शन का पराभव नहीं होगा; किन्तु परतीर्थ को भयभीत करेगा.

(६) छठ्ठे स्वप्न में उकरड़े पर कमल ऊगा हुवा देखा उस का अर्थ यह है कि सत्य धर्म उत्तम कुल में अल्प रहेगा और नीच कुल में अधिक निवास करेगा.

(७) सातवें स्वप्न में ऊसरभूमि (खारी ज़मीन) में बीज बोते हुवे अवलोके; उस का भाव यह है कि मंदमती प्राणी पात्रापात्र को जाने विना सुपात्र की बुद्धि से कुपात्र को दान देंगे; जिस तरह अज्ञाण की दृष्टि से अज्ञान कास्तकार खारी जमीन में बीज बोने लगें.

(८) आठवें स्वप्न में सुवर्ण कलश मलीन दशा में चस्मदीद हुवा; उस का परमार्थ यह है कि ज्ञानादि गुण निष्पन्न महामुनियों की संख्या कम होगी और उन की पूजा--प्रभावना न होगी; किन्तु बाह्य आडम्बरी, ज्ञान--क्रिया रहित, साध्वाभाष, वेषधारियों का सत्कार--सन्मान होगा; काल के प्रभाव से गीतार्थों को भी हीनाचारियों के साथ मिलकर चलना पड़ेगा---अनेक पागलों के साथ सज्जनों को भी अपने जीवन के लिये मिल जाना पड़ता है; इसे सिद्ध करने के लिये यहाँ पर एक विलक्षण दृष्टान्त बताते हैं---



पृथ्वीपुर नगर के अन्दर पूर्णभद्र नाम का राजा राज्य करता था, उस के एक सकल कार्यकुशल सुबुद्धि नामक मन्त्रीश्वर था, किसी एक समय राजसभा में लोकदेव सज्ञक निमित्तिये का आगमन हुवा, अमात्यने पूछा—हे नैमित्तिक चूडामणे! भविष्यकाल की कुछ शुभाशुभ हकीकत प्रकाशित करो? निमित्तवादी ने अपने शास्त्र का पर्यालोचन कर कहा–हे मन्त्रीश्वर! आज़ से एक महिने पर मेघवृष्टि होगी, उस का जल जो पान करेंगे वे सब पागल होजांयगे, तदनन्तर कितनेक दिन पीछे शुभ वर्षा होगी, उसके जल से पुनः अच्छे होजांयगे.

इस बात को सुनकर राजा के हुकुम से पानी सग्रह करने की नगर में उद्घोषणा हुई, नगर के तमाम लोगों ने जल इकठ्ठा कर लिया; निमित्तिये के कथनानुसार ठीक समय पर वर्षा हुई, इस वख्त

किसी ने पानी न पिया, आखीर संग्रहित सलिल खूटजाने से राजा और प्रधान के सब लोगों ने जलपान किया, इस से सारा ग्राम पागल होगया–अब तमाम जन नग्न होकर नाचने लगे, हंसने लगे, और अनेकविध कुचेष्टाओं करने लगे; राजा और अमात्य को अपनी दशामें नहीं देखकर सर्वजन कहने लगे कि ये दोनों घेले होगये हैं; देखो ! ये अपना कार्य नहीं करते; अतः इन्हें हटाकर अन्य राजा–प्रधान कायम करेंगे ! मंत्रीश्वरने यह बात सुन नृपेन्द्र को निवेदन किया कि अपने जीवन के लिये इन के साथ मिलजाना पड़ेगा; महाराजा ने स्वीकार किया और दोनों जन उस पागल मंडल में सामिल होगये–कितनेक टाइम पीछे दुग्धधारावत् नीरकी वृष्टि हुई, उस पीने से समस्त लोग पुनः सावधान होगये.

कहने का प्रयोजन यह है कि दुषम काल में क्रियावन्त गीतार्थ मुनिजन भी हीनाचारियों के साथ मिलकर विचरेंगे——प्रभु के मुख से स्वप्नों का फल सुनकर पुण्यपाल नृपेन्द्र ने वैराग्य पूर्वक श्रीवर्धमान-स्वामी के पास दीक्षा अंगीकार करली और चारित्र का सम्यग् आराधन कर क्रमशः मोक्ष को प्राप्त हुवे—— इस ही तरह आत्मार्थियों को भी वैराग्यवान् होना चाहिये.

इस स्थानपर कितनेक महापुरुष भद्रबाहुस्वामी के कथित स्वप्नों का भी व्याख्यान करते हैं; वह इस प्रकार है—

चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र के—
सोलह स्वप्न और उन का फल

पाटलीपुर नगर में चन्द्रगुप्त राजा राज्य करता था, जीवाजीव का ज्ञाता, जिन शासन का अत्यन्त प्रेमी, श्रावकधर्म प्रतिपालक नरेन्द्र एक वख्त पाक्षिक पौषध लेकर धर्मजागरण कर रहा था, रात्री में सोलह स्वप्न देखकर चमत्कृत हुवा, प्रभात मे व्रत पालकर सानन्द अपने निवास स्थानपर चला गया—इस समय वनपालक के मुख से सुना कि चौदह पूर्वधारी श्री संभूतविजयजी महाराज के शिष्यरत्न युगप्रधान श्रुतकेवली

भगवान् श्री भद्रबाहुस्वामी अपने (५००) शिष्य परिवार सहित नगर के बाहर पाटली नामक वनखण्ड में पधारें हैं; अवनिपति आत हर्षित होकर कौणिक राजा के समान ऋद्धिपूर्वक दर्शनार्थ आया; पाँच अभिगम + सहित वंदन करके नम्रता पुरस्सर प्रार्थना की–हे प्रभो ! गत रजनी में मैंने विचित्र सोलह स्वप्न देखे; उन का फल क्या है ? सो कृपाकर प्रदर्शित करें–राजेन्द्र के स्वप्न और भगवान् भद्रबाहुस्वामी के प्रकाशित फल क्रमशः दिखलाते हैः—

(१) पहिले स्वप्न में राजेन्द्र ने कल्पवृक्ष की भग्नशाखा देखी; उसका फल यह है कि अब से पीछे कोइ भी राजा दीक्षा अंगीकार न करेगा.

(२) दूसरे स्वप्न में अकाल में सूर्य अस्त अवस्था में निहाला; उस का फल यह है कि केवलज्ञान विच्छेद होगया.

+ (१) सचितका त्याग २ महत्ता दर्शक अचितका त्याग ३ एक अखण्ड वस्त्र का उत्तरासन ४ अंजली करण ५ अनिमेष दृष्टि द्वारा अवलोकन; ये पांच 'अभिगम' कहे जाते हैं.

(३) तीसरे स्वप्न में सौ छिद्रवाला चन्द्रमा अवलोका; उस का फल यह है कि एक धर्म में अनेक पंथ निकलेंगे

(४) चौथे स्वप्न में भूतों को नाचते हुवे देखे उस का फल यह है कि कुमती लोग उच्छृंखलतासे नाचेंगे.

(५) पांचवें स्वप्न मे बारह फणवाला भुजंग निहाला, उस का फल यह है कि बारह वर्ष पर्यन्त दुर्भिक्ष (बारअकाली) पडेगा—कालिक प्रमुख सूत्र विच्छेद होंगे—चैत्यद्रव्य (देव द्रव्य) खानेवाले चैत्यवासी (शिथलाचारी भिक्षुक) होंगे और साधु धर्माभिलाषी सर्व मुनिजन दक्षिण दिशा में वल्लभीपुर की तरफ चले जांयगे.

(६) छठ्ठे स्वप्न में देव विमान को गिरता हुवा देखा, उस का फल यह है कि जघा चारण—विद्या—चारण मुनि भरत—ऐरवत में नहीं आवेंगे

(७) सातवें स्वप्न में कचरेवाली जमीन पर कमल ऊगा हुवा देखा उस का फल यह है कि चार वर्णों में से सिर्फ वैश्यवर्ण में धर्म अधिक रहेगा और सूत्र की रुचि बहुत अल्प जीवों में होगी.

(८) आठवें स्वप्न में आगिये को प्रकाश करते अवलोका; उस का फल यह है कि जैन धर्म का पूजा सत्कार विशेष नहीं होगा; किन्तु मिथ्या दर्शन का सत्कार–सन्मान होगा.

(९) नवमें स्वप्न में शुष्क सरोवर देखा; उस का फल यह है कि जिनकल्याणकवाले पवित्र स्थलों में धर्म की महति हानि होगी.

(१०) दशमें स्वप्ने स्वर्णपात्र में खीर खाते हुवे कुत्ते को निहाला उस का फल यह है कि उत्तम लक्ष्मी मध्यम कुल में रहेगी.

(११) इग्यारवें स्वप्न में बन्दर को हाथी पर चढा हुवा देखा; उस का फल यह है कि दुर्जनलोग सुखी रहेंगे और सज्जन जन दुःखी होंगे.

(१२) बारवें स्वप्ने समुद्र को-मर्यादामुक्त अवलोका, उस का फल यह है कि राजा-महाराजादि अन्याय करने वाले होंगे और क्षत्रीय जन कुपंथगामी होंगे.

(१३) तेहरवें स्वप्ने एक जगी रथमें बछडे जुते हुवे निहाले; उसका फल यह है कि लघुवयष्क चारित्र अगीकार करेंगे, परन्तु वृद्धवयवाले संयम नहीं लेंगे, और चरणधारी प्रमादी होंगे

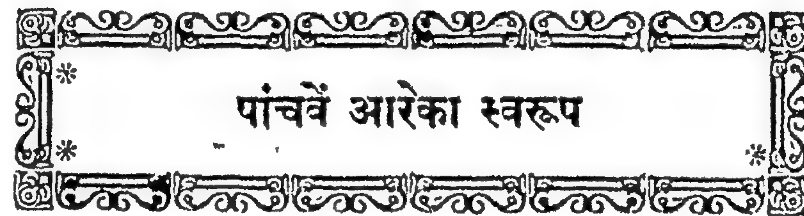
(१४) चौदहवें स्वप्ने महामूल्य रत्न तेजोहीन देखा; उसका फल यह है कि भरत-ऐरवतमें साधुजन उपद्रव और क्लेश करनेवाले होंगे, क्षमा के सागर विरले होंगे

(१५) पन्द्रहवें स्वप्ने राजकुमार को बेलपर सवार हुवा अवलोका, उसका फल यह है कि राजवंशी क्षत्रीगण मिथ्यात्व वासनावाले होंगे

(१६) सोलहवें स्वप्न में हाथी के दो बच्चों को युद्ध करते हुवे निहाले, उस का फल यह है कि स्नेहहीन मुनिजन आपुस में लड मरेंगे; गुरुमहाराज की सेवा करनेवाले अल्प मुनिजन होंगे

श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी मुख से स्वप्नों का फल सुनकर भवभीरु चन्द्रगुप्त नृपेन्द्र ने अनशन ग्रहण कर लिया और धर्मध्यान करता हुवा स्वर्गवास को प्राप्त हुवा—इस ही प्रकार धर्मप्रेमी लोगों को भी भवभीरु होना चाहिये.





पांचवें आरेका स्वरूप

उपरोक्त हकीकत सुनकर आश्चर्य युक्त हुवे श्रीगौतमस्वामी ने परमात्मा श्रीमहावीर देव को सादर वंदन कर पंचम आरेका स्वरूप पूछा; उस पर देवाधिदेवने इस कदर प्रवचन किया—

हे इन्द्रभूते ! मेरे निर्वाण के पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मास गुजरने पर चौथा आरा उतरकर (२१) हज़ार वर्ष प्रमाण पांचवाँ आरा लगेगा—मेरे निर्वाण के (१२) वर्ष पीछे तेरा मोक्ष होगा (२०)

वर्ष बाद 'सुधर्म' की मुक्ति होगी और (६४) वर्ष अनन्तर 'जम्बू' सिद्धिपद प्राप्त करेगा, पश्चात् (१०) वस्तुएँ विच्छेद होंगी—

(१) आहारक शरीर (२) पुलाक लब्धि (३) मनः पर्यव ज्ञान (४) केवल ज्ञान (५) परमावधिज्ञान (६) क्षपकश्रेणी (७) उपशमश्रेणी (८) परिहारविशुद्धि–सूक्ष्मसम्पराय–यथा–ख्यात चारित्र (९) जिनकल्प (१०) सिद्धिगति.

जम्बू के पाटपर चतुर्दश पूर्वधारी प्रभाविक 'प्रभव' होगा; तत्पट्टे दशवैकालिक का कर्त्ता; मनकपिता 'शय्यभवसूरि' होगा, तत्पट्टे यशोभद्रसूरि, तत्पट्टे संभूतविजय और तत्पट्टे अन्तिम श्रुतकेवली 'भद्रबाहु' होगा

मेरे मोक्ष के (१७०) वर्ष पीछे अनेक ग्रन्थों का निर्माता भद्रबाहु का स्वर्गवास होगा (२१५) वर्ष बाद श्रुतकेवली सम्भूतविजय का शिष्य 'स्थूलिभद्र' स्वर्गवास सिधावेगा; तदनन्तर मूलतः ऊपर के चार पूर्व और महाप्राणायाम ध्यान विच्छेद होगा.

मेरे अपवर्ग के (३००) वर्ष पश्चात् उज्जयनी नगरी में धर्ममूर्ति ' सम्प्रति ' नाम का राजा होगा, आर्यसुहस्ति आचार्य के दर्शन से जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त करके जैन धर्म अंगीकार करेगा; ज्ञानवान्–दयावान्–विनयवान्–धर्मज्ञ–नीतिवान् और पराक्रमी नृपेन्द्र तीन खण्ड का भोक्ता होगा, मोतियों की हार समान उज्ज्वल जिनालयों कराकर वसुंधरा देदिप्यमान करेगा; अनार्य देश में लोगों के उपकार के लिये सम्यक्त्वधारी, जीवाजीवादि नवतत्व के जाननेवाले उपदेशक श्रावकों को भेजकर धर्मोपदेश करावेगा तथा परम संवेगी गीतार्थ मुनियों के विचरने योग्य मार्ग की सरलता करके सर्वत्र जैन धर्म प्रवर्तावेगा.

मेरी मुक्ति के (४७०) वर्ष बाद उज्जयनी में ' विक्रमादित्य ' राजा होगा. सिद्धसेनदिवाकर के उपदेश से जिन शासन का परम भक्त बनेगा; सत्त्वसिद्ध–अग्निवेतालादि अनेक देव उसके सहायकारी होंगे, सुवर्णपुरुषादि सिद्धि प्राप्त होगी; धैर्यादिगुण प्रसिद्ध राजेन्द्र की स्थान २ पर सुर–नर प्रशंसा करेंगे; दान–सन्मान से सर्व को कर्ज़ रहित करके अपने नाम का सम्वत्सर चलावेगा; प्रतापशाली भूपेन्द्र परदुःख भंजक और परदारा–सहोदर होगा,

मेरे निर्वाण के (५८४) वर्ष पीछे वज्रमुनि होगा, उस के बाद दसवाँ आधापूर्व और पांचवां कीलीका संघयण नाश होगा–(६०५) वर्ष बाद शाखीराजा–'शालीवाहन' होगा–(६०९) वर्ष व्यतीत होने पर रथनपुर नगर से दिगम्बर मत की उत्पत्ति होगी–(६१६) वर्ष बाद पुष्पमित्र से साधंनवाँ पूर्व विच्छेद होगा–(६२०) वर्ष अनन्तर आचार्यादि ग्राम में निवास करने लगेंगे

मेरे मोक्ष के (९९३) वर्ष पश्चात् कालिकाचार्य होगा, पचमी का पर्युषणपर्व कारणवशात् चौथ में स्थापन करेगा, इन्द्रादिक का वदनीक होगा–(१०५५) वर्ष पीछे अनेकग्रन्थ का कर्त्ता, महाप्रभाविक 'हरिभद्रसूरि' होगा–(१२७०) वर्ष व्यतीत होने पर सर्वविद्याविशारद 'बप्पभट्टसूरि' होगा, उसके वचन से आमराजा गो पर्वतपर जिनालय करावेगा, उसमे साडे तीन क्रोड सुवर्णमुद्रा की स्थापना करेगा–(१३००) वर्ष गुजरने पर अनेक मत निकलेंगे–मोहदशा के कारण तथा दुष्मकाल के प्रभाव से अनेक गच्छ भेद होंगे– तपस्वी अहकारी होंगे, कितनेक धर्म क्रिया में शिथिल होंगे और क्रियावन्त साधु परस्पर द्वेष करेंगे इस अवसर्पिणी में गर्भापहार–स्त्री तीर्थंकर प्रभृति (१०) अछेरे (आश्चर्य) हुवे हैं

हे गौतम ! आगन्तुक दुषमकाल में बहुतेरे लोग क्रोधवन्त, मर्यादारहित, धर्म बुद्धिहीन, वक्र–जड़ और परमोपकारक धर्म रहित होंगे–ज्यों २ काल पड़ता जायगा त्यों २ मिथ्याधर्म में अभिलाषा होगी–शहर गामड़े और गाम श्मसान सरीखे होंगे–प्रजा को पालन में राजा यमराज सदृश होंगे–धनवन्त निर्धन होंगे–देवता प्रत्यक्ष दर्शन न देंगे–मनुष्यों को प्रायः जातिस्मरणादि ज्ञान न होंगे–पृथ्वी पर अधिकतर विघ्नसंतोषी होंगे–धर्मकार्य में प्रमाद करेंगे और पाप कार्य में चतुर्भुजा बनेंगे–अपने स्वार्थ के लिये दूसरे के पेटमें प्रवेश कर जांयगे और अन्य को अनेक उपद्रव करेंगे–निर्दयजन भद्रिक जीवों को ठगेंगे–धर्मी थोड़े और ढेरसारे अधर्मी होंगे–अभिमानी, अनाचारी और अन्याई लोग बहुत होंगे–कुलवती स्त्रियाँ लज्जाविहीन होंगी, कइयक वेश्या समान होंगी; सारांश की थोड़े सज्जन और अतिशय दुर्जन होंगे.

हे गौतम ! पंचमकाल में लोगों को अग्नि का भयंकर उपद्रव होगा–गाय वगैरः जानवरों का बहुत वध होगा–कितनेही जिनचैत्य (जिन मंदिर–देरासर) गिर जांयगे–अनेक ज़हरीले रोगों के चलने से वस्ती का प्रमाण अल्प होजायगा–कितनेही देश खेदान–मेदान होजांयगे–दातार दरिद्री और लक्ष्मीवन्त कृपण

होंगे–हीनकुलवाले राजा और उत्तम कुलवाले सेवक होंगे–आर्य दुःखी और अनार्य सुखी होंगे.



प्रसंगवशात् यहाँ पर पुराण से उद्धृत कलियुग का महात्म्य कहते हैं—

❋ कलियुग का महात्म्य ❋

द्वापरयुग के अन्दर युधिष्ठिर नाम के राजा होगये हैं, उनके पास एक भविष्यवेत्ता ब्राह्मण रहता था, एकदा ये दोनों जन वन में अटन करने को निकले, उस वख्त वहाँ अनेक आश्चर्यकारी दृश्य देखे; नृपेन्द्र के दृश्य और ब्राह्मण के दिखलाये हुवे उपनय क्रमशः यहां पर प्रदर्शित करते हैं:—

(१) पहिले दृश्य में वड़ी गायको लघुगाय के (वाछड़ी के) स्तनपान करते देखी; उसका उपनय यह है कि कलियुग में निःसत्व मात–पिताओं कन्याविक्रय रूपी घात की कर्म करके अपना निर्वाह करेंगे.

(२) दूसरे दृश्य में श्रेणीबंध तीन सरोवरों में से पहिले का जल उछलकर तीसरे में गिरता हुवा देखा मगर मध्य में एक बिन्दु भी नहीं गिरता था; उसका फल यह कि जनसमाज अपने सम्बंधिओं को छोड़कर अन्य के साथ प्रीति करेंगे.

(३) तीसरे दृश्य में बहुत लोग मिलकर रेतिकी रस्सी बनाते हुवे देखे; परन्तु किसी तरह भी नहीं बन सकी; उसका नतिज़ा यह है कि खेडुतों का अतिशय दुःखों से प्राप्त किया हुवा धन अनेक यत्न करने पर भी राजदंड वगैरः से नहीं बच सकेगा.

(४) चौथे दृश्य में कुवेकी पणनाल का पानी कुवेमें गिरता हुवा निहाला; उसका परिणाम यह है कि कृषी–वाणिज्य वगैरः से काठिनता पूर्वक धन उपार्जन करेंगे, वह राजकर्मचारी लूँटेगे और राजाजन अनेक विपरीत करों से प्रजाका धन हरण करेंगे–सतयुग में राजा लोग अपना धन खर्चकर प्रजाका पालन करते थे और कलियुग में प्रजाको खूब चूँसेंगे–इति वैपरित्यम्.

(५) पाँचवें दृश्य में सुन्दर चंपक वृक्ष के पास एक बावल के दरख्तकी चन्दनादि से पूजन करते हुवे बहुत से मनुष्यों को देखे; उसका उपनय यह है कि उत्तम आचारवन्त को छोड़कर मनुष्य कण्टक समान वेषधारियों की पूजा करेंगे

(६) छठ्ठे दृश्य में वालके अग्र भाग से एक बडी शिला आकाश में लटकती हुई अवलोन की उसका फल यह है कि पापशिला अल्प धर्म से लटकती रहेगी और धर्मरूपी वालाग्र के टूट जाने से सर्व अधोगति में डूब जायगे.

(७) सातवें दृश्य में फल के लिये वृक्ष को काटते हुवे देखे उसका नतिज़ा यह है कि पुत्र के लिये पिता कष्ट सहन करेंगे.

(८) आठवें दृश्य में एक सोने की कड़ाह मे लोगों को मांस पचाते हुवे देखे, उसका अर्थ यह है कि अपने हितकारी कुटुम्ब को छोडकर जनता दूसरे के लिये शिर देगी.

(९) नवमें दृश्य में गरुड़ को छोड़कर नाग की पूजा करते हुवे देखे; उसका फल यह है कि दया रहित अधर्मीजनों की बहुत से पूजा—सत्कार करेंगे और उत्तम धर्मज्ञों की अवज्ञा करेंगे.

(१०) दशवें दृश्य में एक गाड़ी में हाथी जुड़े हुवे और एक में गर्धव (गधे) युगल जुड़ा हुवा अवलोका, उसमें हाथी लड़ते हुवे और गर्धव शान्ति से जारहे थे; उसका अभिप्राय यह है कि उत्तम कुल के मनुष्य परस्पर ईर्षाकर लड़ेगे और नीच कुल के लोग परस्पर स्नेही तथा नीतिवन्त होंगे—प्रायः मध्यम कुल के राजा और उत्तम कुल के सेवक होंगे.

एक समय पांचो पांडव वनवास में रहे हुवे थे, तब युधिष्ठिर राजेन्द्र ने चारों भाईयों को चार प्रहरका पहरा भरने का शासन किया; पहिले पहर में भीम पहरा भरने लगा और चारों भाई निद्राशरण हुवे; उस वख्त कलियुगरूप पिशाच ने कहा—'अहो भीम ! में तेरे भाईयों को मारूंगा' ऐसा वचन सुनकर भीम क्रोधातुर होकर उसे मारने को दौड़ा, आपुस में द्वन्द युद्ध होने लगा, अन्तमें कलिपिशाचने लीला करते हुवे भीम को जीत लिया; इस ही प्रकार क्रमशः अर्जुन, नकुल और सहदेव को दूसरी—तीसरी

और चौथी प्रहरमें जीत लिये, अखीर पीछली रात्री में युधिष्ठिर जगने लगे और शेष सब सोरहे; कलियुग ने आकर कहा–हे राजन्! तेरे सामन तेरे चारों भाईयों को प्राणमुक्त करूंगा! सर्व कल्याणकारिणी सर्वजन प्रियंकरा और सर्व धर्म में शिरोमणि क्षमा को धारण कर नृपेन्द्र मौन रहे, राजा की शान्ति देखकर कलि उन के मुष्टि में आगया, प्रात. काल में सब भ्राता उठे और रात्री की बीतक बात युधिष्ठिर को कही; राजा ने कहा–भाईयों! क्षमा के प्रभाव से भूत मेरे वशीभूत होगया है; ऐसा कहकर मुठ्ठी खोलदी और उस में रहा हुवा कलिरूप पिशाच दिखा दिया–इस तरह कलियुग के वर्णन में १०८ दृष्टान्त लौकिक पुराण में उल्लेख किये गये हैं.

———=×∘○+[०]+○∘×=———

हे गौतम! इस पचम काल में निष्कलंक कुल के मानव थोड़े होंगे–पृथ्वी में रम्य वस्तु की हानि होगी–बाल तथा युवान मरण बहुत होंगे और मात–पिता दीर्घायुषी होंगे–ब्राह्मण वेदपाठ और षट्कर्म को त्यागकर शस्त्र धारण करेंगे–पुत्र जनक–जननी का विनय, वैयावच्च न करेंगे; किन्तु उलटा दुःख देंगे–

बहु सासू का विनय न करेगी; बल्कि कुछ कार्य बताने पर सर्पणीवत् डंकतुल्य वचन कहेगी और सासू भी कालरात्री समान बहु की हिलना करेगी—शिष्य गुरु का सन्मान न करेंगे और गुरु शिष्य को हितशिक्षा न देंगे—मंत्र, तन्त्र जन्त्र, औषधज्ञान, धन आयु, फल, पुष्प, रस, रूप, सौभाग्य, सम्पत्ति, संघयण, बल, यशःकीर्ति, गुण, शोभा प्रमुख वस्तुओं की हानि होगी देवताओं के अन्दर देवत्व और सतियों में सतित्व और ज्ञानियों में वैराग्य प्रायः अल्प रहेगा; तपस्वी ईर्षा से तपस्या करेंगे—सत्य, शौच, तप. क्षमादि दिन ब दिन कम होते जांयगे, पृथ्वी में रस—कस हीन होता जायगा.

हे इन्द्रभूते ! मेरे निर्वाण के (१६६९) वर्ष पीछे चौलुक्यकुल में चन्द्र समान, महाबलवान्, अखण्ड जिनआज्ञा धारक, पाटण गुजरात का अधिपति, 'कुमारपाल' राजा होगा; दान से, कीर्ति से, न्याय से, विवेक से, धैर्य से, शौर्य से और राजलीला वगैरः से एक अद्वितीय नृपेन्द्र होगा; उत्तर में यवन देश पर्यन्त, पूर्व में गंगानदी तक और दक्षिण—पश्चिम मे समुद्रपर्यन्त देशों को साधेगा; (११) सो हाथी (१०) हज़ार रथ, (११) लाख घोड़े और (१८) लाख पैदल सेना होगी—किसी समय वज्रशाखाधारी

चन्द्रकुलावतन्स हेमचन्द्रसूरि के उपदेश से श्रावक के बारह व्रत अंगीकर करेगा–पृथ्वीपट जिनप्रासादों से मंडित करेगा–हेमचन्द्राचार्य के मुखसे जीवितस्वामी की प्रतिमा का सम्बंध सुनकर वीतभयपत्तन के मार्ग में किले के नीचे से प्रभुप्रतिमा निकलाकर पट्टनमें स्थापन करावेगा–प्रतिमा की शुश्रुषा के लिये उदायन धरणीधर के दिये हुवे गाम प्रकट होंगे, उतने ही गांव कुमारपाल भी देगा–हमेशां जिनवंदन और पूजन करेगा–स्वदारा संतोषी होगा–वर्षाकाल में त्रिविध २ ब्रह्मचर्य पालेगा, कदाचित मनसे भंग होजाय तो उस दिन प्रायश्चित में उपवासादि व्रत करेगा–अढारह देश में अमारी पड़ह (जीवदया की उद्घोषणा) बजावेगा–चौमासे में सेनासमूह न करेगा, इस प्रकार कुमारपाल राजेन्द्र धर्मधुरंधर नरेन्द्र होगा.

हे गौतम! पंचम काल में साधुजन मन्त्र–तन्त्र–यन्त्रादि में नित्य उद्यमशील होंगे, धन के लिये ज्योतिष, और वैद्यकविद्या धारण करेंगे, वस्त्र पात्रादि उपगरण के वास्ते श्रावकों से युद्ध करेंगे–जिस तरह डंडे बजाकर राजा प्रजा के पास से पैसा लेंगे, उस ही तरह मुनिलोग श्रावकों के पास से धनादि संग्रह करेंगे मतलब कि श्रमण कम और मुडमस्तक बहुत होंगे.

कलंकी राजा का बयान.

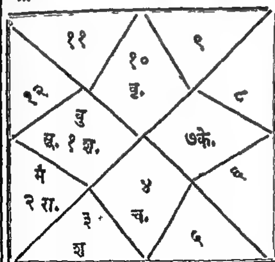
हे गौतम ! पंचम आरे में म्लेच्छ कुल में जन्म पाया हुवा पाटलीपुर नगर में घोर अन्यायी कलंकी नाम का राजा होगा ⊛ उसका बयान इस प्रकार है:—

* कलंकी के जन्म सम्बंधी अनेक अभिप्रायों बांचने व सुनने में आते हैं; परन्तु वस्तुतः महानिशीथ सूत्र-युग प्रधान गंडिका-दुषम स्तोत्र-उदय यन्त्र वगैरः ग्रन्थों की सम्मती से पंचम आरे के साढ़ेदस हज़ार वर्ष बीत जाने पर कलंकी का जन्म होना सिद्ध है और यह संगत भी है; देखिये—

महानिशीथ सूत्र में यह फरमाया है कि मूल कलंकी का जन्म आठवें उदय में श्रीप्रभ युगप्रधान के वक्त में होगा; तो अब समझना चाहिये कि सातवां उदय श्रीमहावीर प्रभु के निर्वाण सम्वत् १०६६७ तक रहेगा फिर आठवां उदय करीब १०१० वर्ष का है तो इस अनुमान से साढ़ेदस हज़ार वर्ष पीछे जन्म होना सत्य प्रतीत होता है-विशेषस्तु केवलीगम्यः.

जशाचंडाल के घरमें यशोदा भार्या के कूक्षि में तेरह मास पर्यन्त गर्भावस्था में रहेगा; पश्चात् चैत्र शुद् अष्टमी मंगलवार को मकर लग्न के षष्ठांश के वहन समय, चन्द्र सूर्य लग्न के स्थिरावस्था में, चन्द्रनाम योग के आनेपर, अश्लेषा के प्रथम पादमें, जयश्री नाम के दिन की रात्री में कलंकी का जन्म होगा, पीले केश, पीले नेत्र और कठोर स्वरवाला होगा, शरीर की ऊचाइ ३ हाथ की होगी; महा विद्यावान्, दीर्घहृदयी और धर्मगुण रहित होगा; पॉच वर्ष की उम्र में उदर पीड़ा, सातवें वर्षे अग्नि पीड़ा होगी, इग्यारह में वर्षे द्रव्य प्राप्ति होगी, अढारवें वर्षे कार्तिक शुद् प्रतिपद् शनिवार को तुलाचद्र, स्वातिनक्षत्र, सिद्धियोग, बवकरण और रावण मुहूर्त्त के अन्दर नन्दन नाम के दिवसमें राज्याभिषेक होगा- आनन्द नाम का तुरंग, दुर्भासक भाला, दैत्यसूदन खड्ग और मृगाङ्क

कलकी की जन्म कुडली



संज्ञक मुकुट होगा; कमर पर सूर्य—चन्द्र के चिन्ह होंगे; कलंकी विक्रमादित्य के सम्वत्सर को हटाकर अगण्य सुवर्णदान देकर अपने नाम का सम्वत् स्थापन करेगा; उन्नीस वर्ष में अपने भुजाबल से भरतक्षेत्र के तीन खण्ड साधेगा; साढ़े वीसवें वर्ष में आबू के राजा की पुत्री से शादी करेगा, और भी अनेक रानियों का पातिराज होगा; इसके महापराक्रमधारी १ दत्त २ विजय ३ मुंज ४ अपराजित नामक चार पुत्र होंगे; दत्तपुत्र की राजधानी राजगृही में होगी उसका नाम दत्तपुर रक्खा जायगा, और विजय की राजधानी अणहल्ल पट्टण में होगी उसका नाम विजयपुर रक्खा जायगा, मुंज को उज्जयनी का और अपराजित को अन्य देशका राज्याधिकारी बनावेगा. कलंकी के राज्य समय बहुत से क्षात्रियों के रुधिर से पृथ्वी स्नान करेगी यानी अनेक क्षत्री मारे जांयगे—उसके (९९) लाख सुवर्ण भंडार होंगे (१४) हजार हाथी (८७) लाख (१४) हज़ार (५) सौ घोड़े, (५) क्रोड़ पैदल और बहुतेरे दास—दासी होंगे—नभः खेलनाम त्रिशूल, पाषाणमय अश्व सवारी के लिये होगा —जब कलंकी राज्य करेगा तब मथुरा नगरी के अन्दर कृष्ण और बलभद्रका मन्दिर गिरजायगा—बहुतेरे रोग और दुष्कालों से मनुष्य पीड़ित होंगे—आनन्द

राजा की उत्पन्न की हुई पांच सुवर्णमयी स्तुम्भिका मे बहुतसा धन है, ऐसा लोगों के मुख से सुनकर उन्हें खुदावेगा और सर्व धन लेलेगा, वहां से गायरूप लवण देवी की पत्थर की मूर्ति प्रकट होगी, राजादि सब मिलकर उस राजमार्गपर स्थापन करेंगे, कोइ वख्त साधु गोचरी के वास्ते उस रास्ते निकलेंगे तब देवप्रभाव से वह गायरूप मूर्ति अपने शींग से मारने दौड़ेगी, उस वख्त तमाम गीतार्थ मुनि एकत्रित होकर विचार करेंगे कि यहाँ जलका भारी उपसंग होगा, ऐसा जानकर सुविहित श्रमण विहार कर जांयगे और आहारलुब्धी वहीं पर पडे रहेंगे

पश्चात् १७ दिनरात तक अत्यन्त वर्षाद गिरेगा, इससे कलकी का नगर जल से ढक जायगा, गंगानदी का जल भी नगर के साथ मिलजायगा, इस समय राजा भागकर किसी ऊँचे स्थल पर रहेगा, जलका तूफान शान्त होजाने पर नवीन नगर बसावेगा—जलके प्रवाह से नन्दकी नव सुवर्णमयी डूंगरीयाँ प्रकट होजांयगी, उन्हे देखकर भूपति प्रचुर लोभी होगा—जो लोग कर नहीं देतेथे उनपर कर लगावेगा और जो देतेथे उनपर अधिक बढ़ावेगा तथा नवीन २ कर कायम करेगा—लोगों के शिरपर असत्य कलंक

देकर तथा अनेक छलद्वारा धन हरण करेगा–सुवर्ण, रजतादि नाश होजाने पर अपने राज्य में चमड़ेका सिक्का चलावेगा–दीन प्रजा के पास धातु के बरतन तक भी न रहेंगे; अतः वृक्षके पत्र में भोजन करेंगे.

वेश्या, पाखंडी और सर्व दर्शनियों के पास से कर लेगा, यहाँ तक कि जैनसाधुओं के पास से गौचरी का छठ्ठा भाग मांगेगा, इस समय सर्व मुनि सामिल होकर शासन देवका आराधन करेंगे इससे अधिष्टायक आकर भिक्षा भाग लेने का निवारण करेंगे, कितनेक काल पीछे याद आनेपर गौचरी का भाग पुनः मांगने लगेगा, मुनिलोग जब देने से इन्कार करेंगे तब सर्व को एक बाड़े में बकरों की तरह पूर देगा, सर्व यतीन्द्र लोग शासन देवका आराधन करेंगे, देव अनेक तरह उपदेश देने लगेंगे; मगर राजा किसी तरह भी न मानेगा तब इन्द्रका आसन कम्पेगा, अपने अवधिज्ञान से मुनियों को संकट में देखकर राजसभामें सुवर्ण सिंहासनपर बैठे हुवे कलंकी के पास वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारणकर इन्द्र आवेगा और इस प्रकार कहेगा—अहो राजेन्द्र ! इन निरपराधियों को क्यों रोक रक्खे हैं ? इन्होंने तुमारा क्या अपराध किया है ? राजा उत्तर देगा–हे ब्राह्मण ! तमाम दर्शनवाले मुझे कर देते हैं तो ये लोग भिक्षा का षष्टांश

भी मुझे नहीं देते, इसलिये इन्हो को घेर रख्वे हैं, तव सुरेन्द्र कहेगा–इन के पास कुछ भी नहीं है, इनका देने का व्यवहार नहीं हैं, इन से मागते हुवे तेरे को शर्म आनी चाहिये, तेरे को कुछ नहीं मिल सकेगा, इन महात्माओं को छोडदे; नहीं तो तुझे महा कष्ट होगा, तदपि राजा नहीं मानेगा, तव इन्द्र कोपाटोप होकर एक चपेटा मारेगा; जिस से भाद्रवाशुद अष्टमी को कलकी (८६) वर्ष की आयुष्य पूराकर नरक में प्रयाण कर जायगा—

पश्चात् इन्द्र उसके पुत्र दत्त को जिनधर्म की शिक्षा देकर राज्यपर स्थापन करेगा और गुरुमहाराजादि को नमस्कार कर अपने स्थानपर चला जायगा–दत्त नृपेन्द्र अपने पिताके पापफल को जानकर धर्म में सदा तत्पर रहेगा, हमेशां प्रभु की पूजा करेगा, अनेक जिनमन्दिरों से भूमिकों भूषित करेगा, यहाँ से जैनधर्म की महति महिमा होगी–भव्यात्माओ! कलकी के पापाचारों को सुनकर पापमुक्त होना और दत्त राजेन्द्र की तरह धर्ममूर्ति बनना.

अव पचमकाल के सघ की संख्या दिखलाते हैं–११ लाख १६ हज़ार राजा जिनधर्म के भक्त होंगे

तथा १ क्रोड़ शासन के प्रभाविक मन्त्री होंगे-२ हज़ार ४ युगप्रधान महा उपकारी आचार्य होंगे, उनमें सुधर्म और जम्बू का मोक्ष होगा, शेष सर्व एकावतारी होंगे–११ लाख ११ हज़ार १६ युगप्रधान के तुल्य प्राणियों के मोहरूपी अंधकार को नाश करने में भास्कर समान अन्य आचार्य होंगे–३३ लाख ४ हज़ार ४ सौ १९ मध्यम गुणधारी आचार्य होंगे–५५ क्रोड़ ५५ लाख ५५ हज़ार ५ सौ २५ अधर्माचार्य होंगे ५५ लाख क्रोड़ ५५ हज़ार क्रोड़ ५४ सौ क्रोड़ ४४ क्रोड़ इतने उपाध्याय–वाचनाचार्य होंगे–१७ लाख क्रोड़ ९ हज़ार क्रोड़ १ सौ क्रोड़ २१ क्रोड़ १ लाख ६० हजार साधुजन होंगे–१० क्रोड़ाक्रोड़ी १२ सौ क्रोड़ ९२ क्रोड़ ३२ लाख ९९ हजार १ सौ साध्वियाँ होंगी–१६ लाख क्रोड़ ३ हजार क्रोड़ ३ सौ क्रोड़ ७० क्रोड़ ८४ लाख, इतने श्रावक होंगे–३५ लाख क्रोड़ ९२ हजार क्रोड़ ५ सौ क्रोड़ ३२ क्रोड़ श्राविकाएँ होंगी; पंचम आरेका यह संघ समुदाय जानना–कितनेक आचार्यों का अभिप्राय है कि यह संघ समुदाय की संख्या पाँच भरत और पाँच ऐरवत सम्बंधी समझना, कितनेक का कथन है कि पंच भरत सम्बंधी जानना और कितनेक का वक्तव्य है कि मात्र एक भरत सम्बंधी ही जानना–तत्वं तु ज्ञानिगम्यम्.

पचम आरेके अन्त में १ दशवैकालिक २ जितकल्प ३ आवश्यक ४ अनुयोगद्वार और ५ नन्दी सूत्र के ज्ञाता दुप्पसहसूरि होंगे। स्वर्ग से च्यवकर इस भारत भूमिपर अवतरेंगे, दो हाथ प्रमाण शरीर होगा; १२ वर्ष गृहस्थाश्रम ४ वर्ष साधुपद और ४ वर्ष आचार्यपद पालन करेंगे, छट २ की उग्र तपस्या करेंगे; आख़ीर अष्टम तपसे विभूषित २० वर्ष की आयुष्य पूर्ण करके सौधर्म देवलोक में उत्पन्न होंगे; वहाँ एक सागरोपम की भवस्थिति भोगकर इसही भरतक्षेत्र में पुनः जन्म लेंगे और यहीं से मोक्ष पद प्राप्त करेंगे.

पांचवें आरेमें २० हजार ९ सौ वर्ष ३ मास ५ दिन ५ पहर १ घड़ी २ पल ४१ अक्षरोच्चार समयः इतने काल प्रमाण जैनधर्म ठीकतोर पर रहेगा, ९९ वर्ष ८ मास २४ दिन २ पहर ५ घड़ी ५७ पल १९ अक्षरोच्चार समय पर्यन्त जैनधर्म मदतः वर्तेगा, इस तरह आरेके प्रांतभाग में जैनधर्म का सर्वथा विच्छेद हो जायगा—आरेके अन्तिम दिनके आदि भाग में १ श्रुत २ सूरि ३ संघ और ४ धर्म विलय को प्राप्त होंगे—मध्यभाग में विमलवाहन राजा, सुमुख मत्री और राजनीति का नाश होगा—अन्ते शायंकाल मे अग्नि का विनाश होगा

पांचवें आरेके अन्त में (१) दुप्पसह सूरि (२) फल्गुश्री साध्वी (३) नागिल श्रावक और (४) सत्यश्री श्राविका; ये चतुर्विध संघ होगा—कहने का तात्पर्य यह है कि पंचम आरेके प्रांत पर्यन्त धर्म प्रवर्त्तेगा; ' पांचवें आरेमें धर्म नहीं है ' ऐसा कहनेवाले को संघ से वाहार किया जायगा; इस प्रकार (२१) हज़ार वर्ष तक पांचवाँ आरा कायम रहेगा—प्रभु फरमाते हैं कि हे गौतम ! पांचवें आरेका यह संक्षेप स्वरूप तेरे सामने निर्देश किया—मुमुक्षों ! इस पंचम काल के महात्म्य को सुनकर सचेत होजाना; फिर गइ हुई बाजी हाथ न लगेगी.



❁ छट्टे आरेका स्वरूप ❁

पांचवें आरेका स्वरूप सुनने के पश्चात् गौतम गणधर ने विनय पूर्वक छट्ठे आरेका स्वरूप पूछा; उस पर परम कृपालु महावीर भगवन्त ने इस प्रकार बयान किया—

हे इन्द्रभूते! पांचवॉ आरा उतरकर इकवीस हजार वर्ष प्रमाण का छट्ठा आरा लगेगा; उसमें धर्मतत्व नाश होगा, मनुष्य अत्यन्त दुष्ट होंगे, माता-पिता के सम्बंध रहित पशु समान होंगे; अतिशय धूल सहित सख्त अनिष्टवायु चलेगा दिशाएँ धुंधली हो जांयगी; चन्द्रमा अत्यन्त शीतलता गेरेगा; सूर्य अतिउष्ण ताप से तपेगा, अत्यन्त शरदी और गरमी की व्याप्ति से लोगों क्लेश पावेंगे-१ धूल २ पत्थर ३ अग्नि ४ क्षार ५ जहर ६ मल ७ विजली, इस तरह सात प्रकार के वर्षाद होंगे, एक २ वृष्टि सात २ दिन तक वर्षेगी; जिस से मनुष्यो को खास-श्वास-शूल-कुष्ट-जलोदर-ज्वर-मस्तक पीड़ादि महारोग होंगे; अंगारे सदृश जमीन होगी; पर्वत-नदी-गड्डे वगैर सब जल सें समानाकार होजांयगे, जल-थलचारी तिर्यंच दु.ख से रह सकेगे, क्षेत्र-वगीचे-वन-लताएँ-वृक्ष-घास वगैर. सब क्षय हो जांयगे, वैताढ्य-ऋषभकूट-गगा-सिंधुको छोडकर तमाम स्थान जलमय हो जांयगे, भारतभूमि कदाचित वहूतर धूलवाली और कदाचित वहुत कीचडवाली होगी.

एक हाथ प्रमाण शरीरवाले-कठोर अंग-दुष्टवर्ण-नष्टुर वचन-रोग पीड़ा से पीडित-कषायी-

निर्लज्ज–वस्त्र रहित वगैरः दुर्दशावाले मनुष्य होंगे; पुरुषों की २० और स्त्रियों की १६ वर्ष की उम्र होगी; छः वर्ष की स्त्री गर्भ धारण करेगी, कुसुवावड़ और अशुभ सुवावड़ें अधिक होंगी; बहुतर सन्तान की माता होगी; रथ के पहिये प्रमाण गंगा–सिंधु नदी का पानी बहेगा; वैताढ्य पर्वत के ऊपर नदियों के दोनों किनारों पर बहोत्तर २ बिल होंगे, उसमें मनुष्यलोग निवास करेंगे; नदियों के तटपर नौ नौ बिल होंगे, उसमें मनुष्य और तिर्यंच बीजमात्र रहेंगे; मांसाहार में आसक्त, निर्दयी और निर्विवेकी होंगे; गंगा–सिन्धु में अगणित मच्छ–कच्छप होंगे; लोग सरिता के पास आकर रात्रिमें जलचर जीवों को खिंचकर किनारे की पृथ्वीपर रख्वेंगे, वे दिन को सूर्य के आताप से पक जांयगे उन्हें वे रजनी में भक्षण करेंगे; कारण कि उस समय उनके पास कोई भी अन्य खाद्य साधन न रहेंगा; इस तरह उनका हमेशां पापमय निर्वाह होगा परमात्मा वदते हैं कि हे गौतम ! छट्ठे आरेका यह संक्षिप्त स्वरूप तेरे सामने मैंने प्रकाशित किया । भव्यात्माओ ! अब प्रमाद को छोड़कर आपको पवित्र कराणियों करनी चाहिये; जिस से छट्ठे आरेमें जन्म धारण न करना पड़े.

❋ उत्सर्पिणी का संक्षेप वर्णन ❋

देवाधिदेव प्रभु महावीर फरमाते हैं कि हे गौतम ! छट्ठा आरा उतरकर उत्सर्पिणी का पहिला आरा तद्रुप होगा, पश्चात् दूसरा आरा पॉचवें सरीखा होगा, उसमें इतना विशेष समझना चाहिये कि–आरेके प्रान्त भाग में सात अहोरात्र तक पहिला पुष्करावर्त्त मेघ वर्षेगा, जिससे पृथ्वीका ताप शान्त हो जायगा–– दूसरा क्षीरोदक नाम मेघ की वृष्टि होगी, जिस से भूमि धान्य निष्पन्न योग्य बनेगी–तीसरा घृतोदक मेघ वर्षेगा, जिस से धरा चिकणी होजायगी–चौथा शुद्धोदक मेघ की वर्षा होगी; जिस से जड़ी–बूंटी वगैरः उत्पन्न होंगे–पांचवॉ रसोदक मेघ वर्षेगा, जिससे अवनिमे रसोत्पत्ति होगी; इस तरह पांच प्रकार के मेघ ३५ दिवस तक वर्षेंगे, जिससे वृक्ष–औषधि–लता–धान्य प्रमुख सर्व स्वयं उत्पन्न होगे, उनको देखकर मनुष्य लोग बिलो से बाहर निकलेंगे और फलादि खाने लगेंगे तथा मांस खाना छोड देंगे, जैसे २ काल बीतेगा वैसे २ रूप–लावण्य–संघयण–आयुष्य–धान्यादि भरतक्षेत्र में बढ़ते जांयगे, ऋतुऐं सर्व सुखप्रदा होंगी, तिर्यंच और मनुष्य क्रमशः रोगरहित होंगे

दूसरे आरेके अन्त में भारत भूमिपर मध्य खण्ड में सात कुलगर होंगे तद्यथा—(१) विमलवाहन (२) सुदाम (३) संगम (४) सुपार्श्व (५) दत्त (६) सुमुख (७) समुचि—जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त होने से विमलवाहन राजा राज्य के लिये ग्राम-नगरादि बसावेगा, घोड़े—गाय वगैरः का संग्रह करेगा, शिल्पकला-लिपि और गणित व्यवहार को प्रकट करेगा; दूध—दही—घी इंधन—अग्नि वगैरः के उत्पन्न होने पर हितैषी राजा रांधने का उपदेश करेगा; ये सर्व व्यवस्थाएँ दूसरे आरेमें होंगी.

तीसरे आरेके ८९ पक्ष व्यतीत होने पर द्वारपुर नगर में समुचि राजेन्द्र की महाराणी भद्रादेवी की रत्नकूक्षि में श्रेणिक राजा का जीव अवतरकर 'पद्मनाभ' नामक प्रथम तीर्थंकर होंगे—सात हाथ का देहमान, सुवर्णवर्णी काया, सिंह लछन, वहत्तर वर्ष का आयुष्य वगैरः सब मेरे समान होंगे, उसके बाद तीर्थंकरों की सर्व व्यवस्थाएँ वर्त्तमान चौवीसी की अपेक्षा पश्चानुपूर्वी के नियम से होगी; किस २ का जीव कौन २ से तीर्थंकर होंगे, वह अब प्रकाशित करते हैं:—

(१) श्रेणिक राजा का जीव पद्मनाभ तीर्थंकर (२) महावीर स्वामी के काका सुपार्श्वका जीव

सूरदेव ती० (३) कोणिक नृपका पुत्र उदायिन का जीव सुपार्श्व ती० (४) पोट्टिल अणगारका जीव स्वयप्रभ ती० (५) दृढायु श्रावक का जीव सर्वानुभूति ती० (६) कार्तिक का जीव देवश्रुत ती० (७) संख श्रावक का जीव उदय ती० (८) आनन्द श्रावक का जीव पेढाल ती० (९) सुनन्द का जीव पोट्टिल ती० (१०) शतक का जीव शतकीर्ती ती० (११) देवकी राणी का जीव सुव्रत ती० (१२) कृष्णवासुदेव का जीव अमम ती० (१३) सत्य की विद्याधर जीव (महादेव का जीव) निष्कषाय ती० (१४) वलभद्र का जीव निष्पुलाक ती० (१५) रोहिणी का जीव निर्मम ती० (१६) सुलसा श्राविका का जीव चित्रगुप्त ती० (१७) रेवती श्राविका का जीव समाधि ती० (१८) सद्दाल श्रावक का जीव सम्वर ती० (१९) द्वीपायन का जीव यशोधर ती० (२०) कषायका जीव विजय ती० (२१) नारद को जीव मल्ल ती० (२२) अम्बड़ का जीव देव ती० (२३) आराम श्रावक का जीव अनन्तवीर्य ती० स्वातिका जीव भद्रकर नाम के चौवीसवे तीर्थंकर होंगे—इनके आयुष्य—कल्याणक—अन्तरकाल—लॉछन—वर्णादि सर्व विलोम व्यवस्थासे होंगे

हे गौतम ! उत्सर्पिणी में बारह चक्रवर्ती होंगे; यथाहि:–(१) दीर्घदन्त (२) गूढदन्त (३) शुद्धदन्त (४) श्रीचन्द्र (५) श्रीभूति (६) श्रीसोम (७) पद्म (८) महापद्म (९) कुसुम (१०) विमल (११) विमलवाहन (१२) रिष्ट अपर नाम भरत.

नव वासुदेव होंगे—(१) नन्दी (२) नन्दमित्र (३) सुन्दरबाहु (४) महाबाहु (५) अतिबल (६) महाबल (७) बल (८) द्विपृष्ट (९) त्रिपृष्ट.

नव प्रतिवासुदेव होंगे (१) तिलक (२) लोहजंघ (३) वज्रजंघ (४) केसरी (५) बली (६) प्रह्लाद (७) अपराजित (८) भीम (९) सुग्रीव.

नव बलदेव होंगे—(१) जय (२) विजय (३) भद्र (४) सुप्रभ (५) सुदर्शन (६) नन्द (७) नन्दन (८) पद्म (९) संकर्षण.

इस कदर ६३ शिलाका पुरुष (उत्तम पुरुष) होंगे: इनमें से इकषठ तीसरे आरेमें और दो (एक तीर्थंकर–एक–चक्रवर्ती) चौथे आरेमें होंगे, इन दोनों का ८४ लक्ष पूर्व का आयुष्य होगा.

पश्चात् कल्पवृक्ष की उत्पत्ति होगी, सर्वत्र युगलधर्म व्याप्त होजायगा चौवीसवें तीर्थंकर से अवसर्पिणी के पहिले तीर्थंकर पर्यन्त १८ कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक धर्म विच्छेद रहेगा

दस १० कोडाकोडी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी और १० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की एक अवसर्पिणी मिलाने से २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक कालचक्र होता है, ऐसे अनन्त कालचक्र इस भरत क्षेत्र में गुज़र गये और अनन्त भविष्य में आवेंगे—जगद्वंद्य परमात्मा श्रीमहावीर देव इस प्रकार काल स्वरूप का प्रवचन करके समवसरण से हस्तिपाल नरेश की शुल्क शाला में पधार गये

❀ प्रभु का मोक्ष समय. ❀

आज़ रात्री को मेरा मोक्ष हो जायगा; ऐसा जानकर जगत्पतिका गौतमस्वामी के प्रति खयाल हुवा कि " इस का मुझपर अनिवार्य स्नेह है इसही से केवलज्ञान की इसे अंतराय हो रही है; अतः इस समय मुझ से पृथक् कर देना चाहिये " तब प्रभुने फरमाया—हे गौतम ! अमुक गाम में देवशर्मा ब्राह्मण है वह

तुझ से प्रतिबोध पावेगा; वास्ते तूँ वहाँ पर जा; एक परम विनीत शिष्य की तरह जगद्गुरु का आदेश पाते ही गौतम गणधर विहार कर गये.

अब प्रभु का परिवार बताते हैं—स्वहस्तदीक्षित १४ हज़ार साधु और ३६ हज़ार साध्वियाँ हुईं—१ लाख ५९ हजार श्रावक और ३ लाख १८ हजार श्राविकाएँ हुईं—३१४ पूर्वधारी, १३०० अवधिज्ञानी, ७०० वैक्रीय लब्धिवन्त ७०० केवली, ५०० विपुलमती—मनः पर्यवज्ञानी, ४०० वादी मुनिजन और ८०० अनुत्तर विमानवासी यतिवर हुवे.

प्रभुके मोक्ष समय इन्द्रका आसन कम्पा, अवधिज्ञान से मोक्ष कल्याणक जानकर अवनितल पर आया और प्रभुको वंदनकर दोनों हाथ जोड़ दुःखसह गद् २ कण्ठ से प्रार्थना करने लगा—

गर्भे जन्मनि दीक्षायां। केवले च तव प्रभो ॥ हस्तोत्तरं क्षणेऽधुना। तद्गन्ता भस्मको ग्रहः ॥ १ ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आपके च्यवन—जन्म—दीक्षा और केवल ज्ञानके समय संप्राप्त उत्तरा—फाल्गुनी नक्षत्रपर इस वख्त भस्मग्रह लगा है.

हे नाथ ! आपकी जन्म राशीपर भस्मग्रह आया है, इससे २ हजार वर्ष तक जिन शासन की पूजा–प्रभावना मंद होगी, इसलिये करुणा लाकर आप अपनी कुछ आयुष्य बढावो ! आपके तपोबल से उसका सत्व नाश होजायँगा–परमात्मा ने फरमाया है–हे इन्द्र ! यह कभी न हुवा न होता है और न होगा, भाविपदार्थ का नाश नहीं है, जैसा बनना है वैसा बनेगा; तीर्थंकर अपना आयुष्य बढाना नहीं चहाते। भस्मग्रह के उतर जाने पर देवता दर्शन देंगे, विद्या–मंत्र अल्प जापसे प्रभाव दिखलावेंगे, कोइ २ स्थानपर जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न होगा, तदनन्तर दुषम काल यानी पांचवें आरेके (१९) हज़ार वर्ष तक धर्म प्रवर्तेगा

देवाधिदेव परमात्मा श्री महावीर देवने ३० वर्ष गृहवास में १२ वर्ष और साड़े छः महिने छद्मस्थ अवस्थामें और ३० वर्ष से न्यून केवलज्ञान पर्याय में सानन्द व्यतीत किये, अपना निर्वाण समय नज़ीक जानकर परमात्मा ने अन्तिम धर्मदेशना में ५५ अध्ययन पुण्य विपाक ५५ पाप विपाक, ३६ पृष्टव्याकरण

अध्ययन (उत्तराध्ययन) और प्रधान नाम अध्ययन (मरुदेवा अध्ययन) का प्रवचन किया—प्रभुका निर्वाण अतिसमीप जानकर सकल सुरेन्द्र—असुरेन्द्र अपने परिवार सहित आये.

अन्त में जगद्गुरु अपनी ७२ वर्ष की आयुष्य पूर्णकर कार्तिक वदि अमावश्या की रात्री में दूसरा चन्द्रसम्वत्सर, प्रीतिवर्धनमास, नन्दीवर्धन पक्ष, उपशम दिवस, देवानन्द रात्री, स्वातिनक्षत्र और नाग करण के प्राप्त होने पर छट तप करके, पद्मासन विभूषित, शुक्लध्यान के चतुर्थपादपर प्रवर्तते हुवे, शैलेशी करण (योगत्रयकी एकाग्रता) कर, ' एरन्ड फलवत् ' ऋजुगति द्वारा मोक्ष पधारे.



प्रभु के मोक्ष पधारने के पश्चात् अनुद्धरिक (उड़ने में असमर्थ) कुंथुराशी उत्पन्न हुई, इस से मुनियों ने विचारा कि आज़ से अब संयम पालन दुष्कर होगा; ऐसा जानकर जीव दयाके खातर अनशन कर लिया—प्रभु के मोक्ष दिन में यानी कार्तिक वदि अमावश्या के दिन नवमल्ल की—नवलेच्छ की जातीवाले

राजा तथा काशी–कोशल देशाधिपति वगैरः अढारह गण नरेन्द्रो ने उपवास सहित पौषध व्रत किया, उसदिन रात्री में भाउद्योत तीर्थंकरके निर्वाण पधार जाने पर समर्थ राजेन्द्र लोगों ने रत्नों का द्रव्यउद्योत किया, तब से दीपावलि पर्व की प्रवर्ती हुई.

गौतम स्वामी का स्नेहालाप और केवल ज्ञान की प्राप्ति.

जिस रात्री मे परमात्मा की मुक्ति हुई उस तमिस्रामें असंख्य देवों के गमनागमन से दिव्य प्रकाश हुवा, देवताओं के मुख से प्रभु का मोक्ष जानकर गौतम स्वामी विलापात करने लगे–अहो! परम कृपालु भगवन्त ने मेरे साथ छल किया कि निर्वाण समय मुझे दूर किया, भगवान् ने ऐसा जाना होगा कि मेरे

पास से केवलज्ञान मांगेगा, बालक की तरह हठ करके मेरा-पल्ला पकड़ेगा; हे स्वामिन् ! मैंने आपको ऐसे लोभी नहीं जाने थे, केवलज्ञान के देने में आपको क्या कमी हो जाती थी ? हे प्रभो ! आपका तो मैं परम सेवक था; फिर मुझे निराशकर क्यों पधार गये ? महत्पुरुष को ऐसा करना योग्य न था; हे नाथ ! मैं कुछ जबरदस्ती केवल नहीं लेता; आपके अनुग्रह पूर्वक देने पर ही लेता; हे परम गुरो ! आपने क्या समझकर अन्त समय मुझे अलग हटाया, उस वख्त तो आपको अपने पास में रखना चाहिये था, इस लोक व्यवहार को भी आपने न पाला, हे परमाधार ! मुझको केवल ज्ञान की तृष्णा नहीं थी; किन्तु आपके दर्शनों की महति पिपासा थी, अबतो आपके दर्शन दूर होगये; हे परम विश्राम ! मैं वीर–वीर अब किसे कहूँगा और मुझे गौतम–गौतम कौन कहेगा; मैं अपने मन के संदेह किसे सुनाउंगा और मेरे संदेह अव कौन रफा करेगा; इस तरह नाना विध विलापात करने लगे; इतने में सहसा आत्म–ज्योति प्रकट हुई कि तुरन्त विचारों ने पलटा खाया और शुद्ध–बुद्ध उद्गार निकलने लगे—

हे वराकजीव ! तूँ पागल होगया है, वे तो निरागी और तूँ सरागी, वीतराग के साथ राग करना युक्त नहीं, एक पक्षीय प्रीति करने में 'दीपक पतंगवत्' दुःखी होना पड़ता है, जिसका नाम वीतराग, वे राग कैसे कर सकते हैं ? उन्होंने अपना नाम सत्य कर दिखा दिया, भगवान् मुझे बार २ बुलाते थे, इससे मैं जानता था कि मुझपर राग है; मगर वह सब 'आश्विन–मेघाडम्बरवत्' आसोज के बद्‌लों की तरह सिर्फ देखाव था; हे आत्मन् ! वे कहां और तूँ कहां ! कोई किसी का नहीं, जगत में सब भ्रान्ति है; इस प्रकार शुद्ध भावना द्वारा मोहदशा का निरसन कर श्रीगौतम स्वामी ने केवल ज्ञान प्राप्त किया



परमात्मा के मोक्ष पधारने से सकल संघको भारी दिलगिरी हुई थी, परन्तु गौतम गणधर को केवलज्ञान उत्पन्न होने से पुनः सर्व आनान्दित हुवे; इन्द्रने प्रभुका निर्वाण महोत्सव करके देह संस्कार किया, कितने ही देवों ने प्रभु की दाढे और कितने ही ने दान्त ग्रहण किये, एवं बहुतेरों ने भस्म ले लेकर

क्षीर समुद्रमें बहादी; पश्चम् प्रातः कालमें गौतमस्वामी के केवल ज्ञान का महोत्सव करके समग्र सुरगण नंदीश्वरद्वीप पहुँचा; वहां पर अट्ठाइ महोत्सवकर सर्व अपने २ स्थानपर चले गये—महावीर देवका निर्वाण सुनकर ज्येष्ठ भ्राता नन्दीवर्धन शोकातुर हुवे, कार्तिक शुदि २ के दिन सुदर्शना बहेन ने अपने भाई का शोक दूर कराने के लिये भोजन कराया तब से लोगों में 'भाई बीज' प्रसिद्ध हुई.

प्रभु के निर्वाण के दिन यानी कार्तिक विदि अमावश्या के दिन पहिले लोग रत्नों के दीपक करते थे, पश्चात् चान्दी के करने लगे और दुषम काल के प्रभाव से आखीर इस वख्त मिट्टी के दीपक किये जाते हैं.

व्याख्यान के अन्तिम भाग में आर्यसुस्थिताचार्य महाराज फरमाते हैं—हे संप्रतें! यह दीपावली पर्वका आख्यान तेरे समक्ष प्रदर्शित किया—यह पर्व सर्व पर्वों में उत्तम कहा गया है; जैसे वृक्षों के अन्दर कल्पवृक्ष, देवताओं के बीच इन्द्र, राजाओं में चक्रवती, नक्षत्रों के अन्दर चन्द्रमा, तेजस्वियों में सूर्य, धातुओं में सुवर्ण, काष्टों में चन्दन और वनों में नन्दनवन उत्तम है; इस ही तरह सर्व पर्वों में दीपावली पर्व

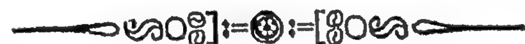
श्रेष्ठ है–इस मंगल पर्व के दिन जगदुद्धारक परमात्मा महावीर देवका निर्वाण–कल्याणक हुवा तथा गौतम गणधर को केवलज्ञान प्राप्त हुवा, अतएव हे नरेन्द्र ! यह दीपावली पर्व सकल सिद्ध–समृद्धिदाता समझना.

इस दीपावली के व्याख्यान को सुनकर अहो आत्महितैषियो ! पौषधसह छट तप–महावीर देवका गुणस्मरण रात्रिजागरण प्रभृति यथाशक्ति धर्म करणी करना चाहिये तथा दीवाली के प्रभात में परमान्न (खीर) के भोजन से गौतमस्वामी का एकासन करके आत्मकल्याण करना.

उपसंहार–धर्माभिलाषियों ! इस दीपावली महापर्व में जगद्वंद्य परमात्मा श्रीमहावीर देवके पुनित संक्षिप्त चरित्र के साथ भविष्यकाल के चित्र–विचित्र दृश्यों के दर्शन कराये गये हैं, उनपर खूब मननकर पूर्ण सावधान होजाना; बस श्रवण का यही फल है– शिवं भवतु सर्वेषाम्.

प्र श स्ति का.

सम्वत् युगल अष्टाङ्क भू (१९८२) होलाष्टक शुभ मान ॥ तीर्थराज भद्रेश्वरे । पूर्ण किया व्याख्यान ॥ १ ॥
सुख भगवान शुभंकर । त्रैलोक्य गुरु गुणमाल ॥ आनन्दरत्नाकर वदे । होना मंगलमाल ॥ २ ॥



तीसरा दीपावलि व्याख्यान सम्पूर्ण

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



चौथा–श्रीज्ञानपंचमी व्याख्यान.

बालब्रह्मचारी नमु । नेमिनाथ भगवन्त ॥ संयम धुनमें धूनते । प्रणमु साधु महन्त ॥ १ ॥
अवलम्बनकर पदकमल । भव्यजीव हितकार ॥ व्याख्यान निर्मल रचु । ज्ञान–पंचमी सार ॥ २ ॥

परम पुनित विश्वनाथ, जगदुद्धारक, परमात्मा श्रीजिनेन्द्र देवको प्रणमन कर तथा चारित्ररत्न धारक, परमार्थजीवी, महागुणवन्त, सन्तजन को वदन करके यह ज्ञान प्रदीपक 'श्रीज्ञानपंचमी व्याख्यान' संस्कृत परसे हिन्दी भाषा में सूत्रित करता हूँ; भव्य मुमुक्षों ! इस आनन्दप्रद व्याख्यान को एक दिल से श्रवण करना, जिससे मानव जीवन कृतार्थ हो.

मूल–उत्थानिका.

महापुरुषों ने यह प्रतिपादन किया है कि जगत्त्रय में सर्व अनिष्ट वस्तुओं का परिहारक और समग्र अभीष्ट अर्थ का प्रदायक ' ज्ञान ' ही होसकता है, इसही से स्वर्ग और अपवर्ग सुख सम्प्राप्त होते हैं; अतएव ज्ञानी महात्माओं ने इसे कल्पवृक्ष की उपमा दी है। जो प्राणी इस महान् पदको ज्ञानपंचमी के तप से विधिपूर्वक आराधन करेंगे वे गुणमंजरी–वरदत्त के समान दिव्य ज्ञान प्राप्त करके क्रमशः निर्वाण पद पावेंगे. तद्यथा—

वरदत्त और गुण मंजरी का दृष्टान्त.

जम्बूद्वीप के दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र में पद्मपुर नामका एक नगर था, उसमें जगत्प्रसिद्ध अजितसेन राजा राज्य करता था, उसके यशोमती नाम की पट्टारानी थी और रूप–लावण्य युक्त वरदत्त नामक

पुत्र था, आठ वर्ष की उम्र में नरेशने पुत्रको पंडित के पास पढने भेजा, किन्तु कर्मदोषवशात् एक अक्षर भी उसे मुह नहीं चढता था, अतएव अध्यापक का प्रयत्न निष्फल गया। यौवन अवस्था में कुष्टरोग से उसका शरीर नष्ट प्रायः होगया, इससे कहीं पर प्रीतिपात्र न होसका

इधर इसही नगर मे सात क्रोड सुवर्ण का अधिपति, जिनधर्म का परमभक्त सिंहदास सेठ वसता था, उसके गुणानिष्पन्ना कपूरतिलका नामकी स्त्री थी, और आजन्म रोग से दु.खी गुणमंजरी नामकी एक गूगी कन्या थी, नाना प्रकार के औषधोपचार करने पर भी उसका रोग शमन न हुवा, (१६) वर्ष की यौवन अवस्था होने पर भी उसका विवाह न होसका, इससे मात–पिता दुःखी होने लगे–इस समय चार ज्ञानधारी श्री विजयसेनसूरि अपने साधु समुदाय सहित नगर के उद्यान में पधारे; तमाम नागरिक लोग तथा राजा और सेठ अपने कुटुम्बसहित गुरुवर के दर्शनार्थं आये, सर्व जन वंदन–नमस्कार करके अपने २ उचित स्थानपर बैठ गये; अवसरज्ञ सूरीश्वरने धर्मदेशना प्रारम्भ की—

❀ गुरुमहाराज की धर्मदेशना. ❀

ज्ञानस्याराधने यत्नो–ऽध्ययनश्रवणादिभिः ॥ भव्यैर्विधेयः सततं । निर्वाणपदमिच्छुभिः ॥ १ ॥
विराधयन्ति ये ज्ञानं । मनसा ते भवान्तरे ॥ नराः स्युः शून्यमनसो । विवेकपरिवर्जिताः ॥ २ ॥
विराधयन्ति ये ज्ञानं । वचसाऽपि हि दुर्धियः ॥ मूकत्वमुखरोगित्व–दोषास्तेषामसंशयम् ॥ ३ ॥
विराधयन्ति ये ज्ञानं । कायेनाऽयत्नवर्तिना ॥ दुष्टकुष्टादिरोगाः स्यु–स्तेषां देहे विगर्हिते ॥ ४ ॥
मनोवाक्काययोगैर्ये । ज्ञानस्याऽऽशातनां सदा ॥ कुर्वन्ते मूढमतयः । कारयन्ति परानपि ॥ ५ ॥
तेषां परभवे पुत्र–कलत्रसुहृदां क्षयः ॥ धनधान्यविनाशश्च । तथाऽऽधिव्याधिसंभवः ॥ ६ ॥ युग्मम्

भावार्थ—निर्वाणपद की अभिलाषावाले भव्यात्माओं को पठन और श्रवण द्वारा ज्ञान पदकी आराधना में निरन्तर यत्न करना चाहिये. १ विवेकवर्जित प्राणी जो मनसे ज्ञान की विराधना करते हैं, वे भवान्तर में शून्य हृदयवाले होते हैं. २. जो दुर्मती वचन से ज्ञान की विराधना करते हैं, वे निःसंशय गूंगे और मुखरोगी होते हैं. ३. यत्नहीन देहधारी जो कायासे ज्ञान की विराधना करते हैं, उनके म्लेच्छतर देहमें दुष्टकुष्टादिरोग उत्पन्न होते हैं. ४. जो दुष्टबुद्धि योगत्रय (मन–वचन–काया) से ज्ञान की निरन्तर

आशातना करते हैं किंवा कराते हैं उनको परभव में आधि–व्याधि उत्पन्न होती है और धन–धान्य–स्त्री–पुत्र–मित्रादि का क्षय होता है. ५४६

अत अहो भव्यात्माओ! सदा ज्ञान की आराधना करनी चाहिये–प्रभु की देशना सुनकर सर्व आनदित हुवे; इस वख्त सिंहदास श्रेष्ठी ने नम्रता पूर्वक सूरीसम्राट को पृच्छा की–" हे भगवन्! किस कर्म के उदय से मेरी पुत्री के शरीर मे रोग उत्पन्न हुवा ?" गुरुमहाराज ने फरमाया–महाभाग! पूर्व भव के कठिन कर्म के उदय से तेरी पुत्री की यह अवदशा हुई है, तुम सब शान्ति पूर्वक इसका पूर्वभव सुनो—

❀ गुणमजरी का पूर्वभव ❀

धातकी खडके मध्य भरत में खटक नामका एक नगर था, उसमें जिनदेव सेठ और सुन्दरी नाम की सेठानी रहती थीं; इनके १ आशापाल २ तेजपाल ३ गुणपाल ४ धर्मपाल ५ धनसार संज्ञक पांच पुत्र थे और १ लीलावती २ शीलावती ३ रङ्गावती ४ मङ्गावती नाम की चार कन्याओ थीं–एकदा सेठने

पांचों पुत्रों को विद्या–कला शीखने के लिये पंडित के पास भेजे; वे सब नाच–कूद करने लगे; मगर अध्ययन बिलकुल नहीं करते; तब पाठक उनको सख्त सजा देने लगा, लड़कों ने रुदन करते हुवे माताके पास आकर अपना दुःख निवेदन किया; जननी ने कहा–बेटाओ! पढने की कोइ जरूरत नहीं है. देखो—

पठितेनाऽपि मर्तव्यं । शठेनाऽपि तथैव च ॥ उभयोर्मरणं दृष्ट्वा । कण्ठशोषं करोति कः ॥ १ ॥

भावार्थ—पठित को भी मरना है और मूर्ख की भी वही दशा है; तो उभयका मरण देखकर कण्ठशोषण कौन करे?

माता अध्यापक को उलहना देने लगी तथा पुस्तक–पट्टी वगैरः सब जला दिये और पुत्रों को कहा–तुम अब से पढने को मत जाना.

सेठको जब यह बात मालुम हुई तब अपनी स्त्री को कहने लगा–हे भद्रे! तूंने यह क्या किया? मूर्ख पुत्रको कन्या कौन देगा और विना ज्ञान के व्यापार ही कैसे कर सकेंगे! नीतिकारका कथन है कि–

माता वैरी पिता शत्रु-र्बालो येन न पाठितः ॥ न शोभते सभामध्ये । हंसमध्ये बको यथा ॥ १ ॥
विद्वत्वं च नृपत्वं च । नैव तुल्य कदाचन ॥ स्वदेशे पूज्यते राजा । विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥ २ ॥

भावार्थ—वह माता वैरिणी और पिता शत्रु हैं; जिसने अपने बालक को नहीं पढाया; सबब कि हंसके अन्दर बुगलेके समान पडितों की सभामें वह मूर्खपुत्र नहीं शोभता. १ विद्वता और नरेन्द्रता कदापि तुल्य नहीं हो सकती, कारण कि राजा तो मात्र अपने देशमें ही पूजनीक होता है और विद्वानरत्न तो सर्वत्र पूज्य होता है २.

यह सुनकर सेठानी वडवडाट कर बोली–मेरा इसमे क्या दोष है ? तुम क्यों नही पढाते ? अनादर के वचन सुनकर विचारा लज्जावान् सेठ मौन रहा–क्रमश. सर्व पुत्र युवान हुवे; लेकिन अपठित होने के कारण कोइ भी कन्या नहीं देता, तब सेठने पुनः कहा–हे पापिष्टे ? तूंने पुत्रों को मुर्ख रक्खे, इनके साथ कोइ भी विवाह नही करता, सेठानी बोली तुमारा बाप पापिष्ट, जिस मूढमती ने इस कदर तुम्हें शिक्षादी–सभ्य श्रोताजनो ! अद्भुत दम्पति के प्रश्नोत्तर का ज़रा लालित्य सुनो—

आः! किं सुन्दरि! सुन्दरं न कुरुषे! किं न करोषि स्वयं!। आः! पापे! प्रतिजल्पसि प्रतिपदं! पापस्त्वदीयः पिता॥
धिक् त्वां क्रोधमुखीमलीकमुखरां–त्वत्तोऽपि कः कोपनो–दम्पत्योरिति नित्यदन्तकलहक्लेशार्तयोः किं सुखम्॥ १ ॥

भावार्थ—सेठ "हे सुन्दरि! खेदकी बात है! तूं सुन्दर काम क्यों नहीं करती?"

सेठानी—"तुम अपने आप क्यों नहीं करते!"

सेठ—"अरे पापिनी! तूं हरवख्त मेरे सामन बोलती है?"

सेठानी—"में पापीनी नहीं; तुमारा बाप पापी है."

सेठ—"अहो क्रोधमुखी! झूठ बोलनेवाली–चपला स्त्रि! तुझको धिक्कार हो! फिटकार हो!!"

सैठानी—"तुमसे बड़कर संसार में कौन क्रोधी है? बस मौन रहो."

इस प्रकार जहां स्त्री–भर्तारमें नित्य क्लेश होता हो, वहाँ कौन सुख हो सकता है–अपितु किमपि नेति.

इस प्रकार पत्नि के तिरस्करणीय शब्द सुनकर जिनदेव की क्रोध खड्ग म्यान से बाहार निकल गई और शीघ्र ही मर्मस्थानपर पत्थरका प्रहार करके स्त्रीको यमराज के शरण कर दी। गुरुदेव बोले–हे श्रेष्ठिन्!

वह ललना वहां से मरकर तेरे यहां पुत्रीपने उत्पन्न हुई, पूर्वभव में ज्ञान की आशातना करने से यहाँ पर रोगाक्रान्त बनी है, सच है ! कृतकर्म किसी तरह नही छोडता. कहा है—

कृतकर्मक्षयो नास्ति । कल्पकोटीशतैरपि ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं । कृत कर्म शुभाशुभम् ॥ १ ॥

भावार्थ—किये हुवे कर्म (निकाचित कर्म) शतशः क्रोड कल्प जाने पर भी क्षय नहीं होता; मगर किया हुवा शुभाशुभ कर्म अवश्य भोगना पड़ता है—निकाचित कर्माश्रित यह कथन है

गुरुमहाराज के मुखसे अपना पूर्वभव सुनकर गुणमंजरी को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा, जिसमे अपनी पूर्वकृत करणी जानकर गुरुवर के सत्य कथन की श्लाघा की.

इस समय श्रेष्ठीवर ने आचार्य महाराज को सादर पूछा—हे भगवन् ! इसका रोग अब किस तरह नाश हो सकेगा ? महात्माश्रीने फरमाया—ज्ञान की आराधना से सकल दुःखों का नाश होगा और समस्त सुखों की प्राप्ति होगी, ज्ञान की विधिपूर्वक आराधना इस प्रकार होनी चाहियेः—

❀ ज्ञानाराधन विधि ❀

शुक्ल पंचमी के दिन उपवास व्रतकर पौषध करना चाहिये। एक पाटपर धर्मग्रन्थ की स्थापना करके उसके सामने स्वस्तिक रचना, जीमनी तर्फ पांच बत्तीका दीपक और डावी तर्फ धूपदान रखने का विधान समझना, पांच प्रकार का अनाज़, मिठाई और फल चढाना उचित है; दावात, कलम और कागज़ सन्मुख रखना चाहिये और भी यथाशक्ति द्रव्य चढाना योग्य है + व्रत के दिन त्रिकाल देववंदन करना तथा उत्तराभिमुख होकर ' ॐ ह्रीँ नमो नाणस्स ' इस पदका एक हज़ार या गुणना (दस या बीस माला) गिनना एवं पांच अथवा एकावन लोगस्स का काउसग्ग तथा खमासमणे देना चाहिये यह व्रत जघन्य से पांच महिने, मध्यम से पांच वर्ष और पांच महिने तथा उत्कृष्टसे जावजीव किया जाता है व्रत पूर्ण होजाने पर यथाशक्ति उद्यापन ❀ करना चाहिये.

+ ये तमाम द्रव्यविधान पंचमी के दिन ही करना योग्य है; परंतु पौषध तो दूसरे दिन प्रातः कालमें पारणे के पहिले करना मुनासिब है.

* उद्यापन की विधि ग्रन्थांतरसे या गुरुमुख से जानना.

गुरुमहाराज के श्रेयस्कर वचन श्रवणकर जिनदेव बोला—" हे भगवन् ! मेरी पुत्री की इतनी तपस्या करने की शक्ति नहीं है, बाकी सर्व विधान साध्य है, " तब गुरुवरने फरमाया कि–प्रतिवर्ष यानि कार्तिक शुक्ला ५ को व्रत करके उपरोक्त सर्व विधान करे; गुणमंजरी ने इस व्रत को गुरुमुख से सादर सहर्ष स्वीकार किया

इस समय राजा पूछने लगा—" हे साधुपुरन्दर ! मेरे पुत्र वरदत्त को कुष्ट रोग कैसे हुवा और विद्या प्राप्त नहीं होने का हेतु क्या है ? " मुनीश्वरने फरमाया—' पूर्वकृत कर्म का विपाक ही हेतु है; अतः सावधान होकर इसका पूर्वभव सुनो—

❀ वरदत्त का पूर्वभव ❀

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रान्तरगत श्रीपुर नामका एक नगर था, उसमें वसु नामका सेठ वसता था, उसके वसुसार तथा वसुदेव नामके दो पुत्र थे, वे दोनों भाई एकदा वनमें क्रीड़ा करने के लिये गये, वहाँ

पर मुनिसुन्दर नामके आचार्य महाराज को देखे, वंदन कर उनके सन्मुख दोनों बंधु बैठ गये; गुरुमहाराज ने उनका भविष्य उज्ज्वल जानकर देशना प्रारम्भ की:—

यत्प्रातः संस्कृतं धान्यं । मध्याह्ने तद्विनश्यति ॥ तदीयरसनिष्पन्ने । काये का नाम सारता ॥ १ ॥

भावार्थ—प्रभात समय में पका हुवा अनाज़ दोपहर को बिगड़ जाता है, उसही अन्नरस से उत्पन्न हुई काया में सारांश क्या है ? अर्थात् कुछ भी नहीं.

अहो महाभाग ! तो फिर संसार में वृथा भटकना योग्य नहीं; इत्यादि देशना श्रवणकर पिताजी की आज्ञा लेकर वैराग्यपूर्वक दोनों भाईयों ने दीक्षा अंगीकार करली; थोड़े ही समय में छोटे भाई वसुदेव सिद्धान्त के पारांगत होगये, गुरुमहाराज ने सूरिपद प्रदान किया; अब ये वसुदेवसूरि एक गीतार्थ की तरह पांच सौ साधुओं को वाँचना देने लगे—

एक वख्त आचार्यश्री रोगाक्रान्त होकर संथारे पर सोये हुवे थे, उस समय किसी साधुने आकर आगमका अर्थ पूछा, सूरीश्वरने उसकी व्याख्या कही, उनके जाने पर दूसरे मुनि आये उनको पाठ दिया;

ज्ञान पं. व्या. || १७० ||

इस प्रकार मुनिजन आने जाने लगे; जरा निद्रा आने पर फिर किसी साधुने आकर पूछा–हे भगवन्! आगे पद क्या है? किसी ने पदार्थ पूछा; इस तरह लेशमात्र भी आराम न मिलने से सूरिमहाराज के हृदय में कुविकल्प रूप तरगें उछलने लगीं—" अहा! मेरा बडा भाई कृतपुण्य है, अपठित होने के कारण उसे कोइ नहीं सताता, सुखंपूर्वक खाता पीता–बोलता–सोता है; निश्चय ही मूर्ख में बहुतेरे गुण रहे हुवे हैं. यथाहि—

मूर्खत्व हि सखे ममाऽपि रुचित तस्मिन् यदष्टौ गुणा। निश्चिन्तो बहुभोजनोऽत्रपमना नक्तं दिवाशायकः॥
कार्याऽकार्यविचारणान्धबधिरो मानापमाने समः। प्रायेणाऽऽमयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुखं जीवति ॥ १ ॥

भावार्थ—हे सखे! मुझको भी मूर्खपना रुचा है, कारण कि उसमें अष्टगुण हैं, यानी मूर्ख अष्ट गुण भूषित होता हैं–(१) निश्चिन्त (२) अधिकतर आहार करनेवाला (३) लज्जाहीन मनवाला (४) रात्रि–दिवस शयन करनेवाला (५) कार्याकार्य की विचारणा में अंधे और बहेरे समान (६) मान–अपमान दोनोंमें सदृश (७) प्रायः रोगवर्जित (८) मजबूत शरीरवाला; इस कदर आठ गुणवाला मूर्ख सुखसे जीता है.

अतः अब से पीछे में किसी को पदमात्र भी न कहूँगा तथा पाठ भी न पढाउंगा; ऐसा विचार कर मौन रहे, इस ज्ञान विराधना के महत्पाप की आलोचना किये विना ही आखीर आर्त्तध्यान में कालकर हे राजन्! तेरे पुत्रपने उत्पन्न हुवा; पूर्वोपार्जित कर्मवशात् दुष्ट–कुष्ट रोगाक्रान्त हुवा–गुरु महाराज के वचन सुनकर वरदत्त को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा; क्षणमात्र में अपना पूर्वभव देखकर गुरुमहाराज के वचनपर श्रद्धावान् बना.

गुरुदेव से राजा ने आदरपूर्वक पूछा–हे प्रभो! इस मेरे पुत्रका रोग कब और कैसे जायगा? महात्माश्रीने पूर्ववत् आराधनाविधि बताकर फरमाया कि इस तरह समाराधन करने से शीघ्र ही रोग शमन होजायगा–कुमार ने सादर स्वीकार किया; आखीर सर्वजन अपने २ स्थान पर चले गये.

अब भलीभांती वरदत्त व्रत करने लगा, इसके प्रभाव से सर्व रोग नाश होगये और एक हजार राजकन्या के साथ विवाह हुवा तथा सकल कलाका ज्ञाता बना, पिताश्रीने पुत्रका राज्य देकर गुरुमहाराज के पास दीक्षा अंगीकार करली; वरदत्त राजेन्द्र नीतिपुरस्सर राज्य को पालता हुवा महति शक्तिद्वारा

पचमीपर्व का आराधन करने लगा, कितनेक समय तक राज्यशासन चलाया, अन्तमें अपने पुत्रको राज्य देकर भवतारणी दीक्षा अंगीकार करली.

❀ अन्तिम स्थिति ❀

तप के महाप्रभाव से गुणमजरी का सर्व रोग दूर हुवा और अद्भुत रूप प्रकट हुवा, जिनचन्द्र व्यवहारी के साथ विवाह हुवा, करमोचन समय पिताजी ने बहुतसा धन दिया, चिरकाल गृहसुख भोगकर दीक्षा अंगीकार की और जीवन पर्यन्त व्रत की आराधना की; वरदत्त और गुणमंजरी तीर्थंकरदेव गदित चारित्र को पालकर आखीर वैजयन्त विमान में देवपने उत्पन्न हुवे.

देवलोक से च्यवकर वरदत्त का जीव महाविदेह में पुडरीकिणी नगर के राजा अमरसेन की महाराणी गुणवती की रत्नकूक्षिमे पुत्रपने अवतरित हुवा, शुभदिन में लड़के का नाम 'शूरसेन' रखना, यौवन अवस्था प्राप्त होने पर एक सौ कन्या के साथ पिताजी ने विवाह कराया और अपने राज्यासन पर स्थापित किया

एक वख्त श्रीसीमंधरस्वामी विचरते हुवे नगर के उद्यान में समवसरे, अर्हद् भगवान् का आगमन सुनकर शूरसेन नृपेन्द्र भक्ति-शक्ति पूर्वक वंदनार्थ गया, भगवन्तने अपनी धर्मदेशना में सौभाग्यपंचमी (ज्ञानपंचमी) तपका फल प्रकाशित किया; तब राजा ने पूछा—"हे परमात्मन्! आगे किसी ने इस पुनित तपका फल प्राप्त किया है?" प्रभु ने वरदत्त भूपति और गुणमंजरी का दृष्टान्त फरमाया, सुनतेही राजा को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा, जिससे अपना पूर्वभव देखा, पुनः पंचमीव्रत अंगीकार किया, दस-हज़ार वर्ष राज्य को पालकर जिनेश्वर के पास संयम ग्रहण कर लिया; एक हज़ार वर्ष चारित्र पालकर उग्र तपद्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया, और अन्त में मोक्ष को प्राप्त हुवे—धन्य हो! नररत्न को अभिवंदन हो.!!

गुणमंजरी का जीव सुरलोक से च्यवकर रमणीय नाम विजय में शुभा नाम की नगरी के अधिपति अमरसिंह नृपेन्द्र की पत्नि अमरावती की रत्नकूक्षि से पुत्रपने उत्पन्न हुवा, अवसर पर पिताजी ने सुग्रीव

नाम स्थापन किया, क्रमशः यौवनावस्था में वहुतेरी राजकन्याओ के साथ लग्न कराये, वीस वर्ष की उम्र में पिता पुत्रको राज्य देकर स्वय दीक्षा ग्रहण कर गया, सुग्रीव भूपेन्द्र वहुत वर्षों तक राज्य पालकर गुरुमहाराज के पास दीक्षा ग्रहण की एक पूर्वलक्ष पर्यन्त चारित्र पालकर केवलज्ञान प्राप्त किया, प्रान्ते अनन्त सुखमय शिवसदन (मोक्ष) को पहूँचे–वरदत्त और गुणमजरी के दृष्टान्त को श्रवणकर आत्म–दीपक प्रकाशक ज्ञानपचमी का आराधन कर धर्मार्थियों को कृतार्थ होना चाहिये

उपसहार—मुमुक्षों ! इस ज्ञानपचमी के व्याख्यान में ज्ञान का आदर्श, उसका विधान और भव्यद्वयका दृष्टान्त प्रदर्शित किया है, इस पर पूर्ण आलोचन कर व्रत–प्रेमी वनना, श्रवण का सार यही है–आनन्दो भवतु सर्वेपाम्



पावक कुंजर नन्द भू (१९८३) चैत्र पूर्णिमा सार । कच्छदेश भुजनगरमें । पूर्ण किया हितकार ॥ १ ॥
सुखकर्त्ता भगवान गुरु । त्रैलोक्य परमाधार ॥ आनन्दसारने रचा । व्याख्यान श्रीकार ॥ २ ॥



❀ चौथा ज्ञानपंचमी व्याख्यान सम्पूर्ण ❀

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

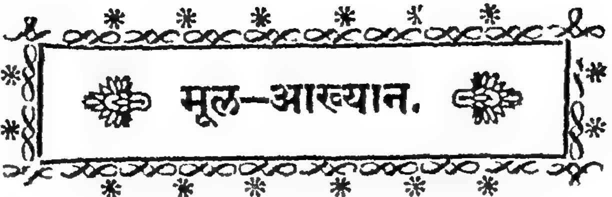


❋ पांचवाँ–श्रीकार्तिकपूर्णिमा व्याख्यान ❋



शत्रुजयअधिपति नमु । शुद्ध सन्त गुणवन्त ॥ कार्तिक पूनम मैं रचु । व्याख्यान जयवन्त ॥ १ ॥

परम पवित्र श्रीशत्रुजय गिरिराजमंडन, विश्वोपकारी देवाधिदेव श्रीआदीश्वर भगवन्त को अभिवदन कर तथा मुक्तिपथ–प्रदर्शक परमत्यागी महात्मा को नमनकर यह हृदय निर्मलकर्त्ता 'श्रीकार्तिकपूर्णिमा व्याख्यान' सस्कृत पर से हिन्दी–भाषा में ग्रन्थित करता हूं; भव्य मोक्षाभिलाषियो ! इस पुनित व्याख्यान को शान्ति पूर्वक श्रवण करना; जिससे जीवन की संस्कृति कृतकृत्य होजाय.



मूल-आख्यान.

महा पुरुषों ने यह प्रवचन किया है कि-अहो भव्यात्माओ ! पापकर्म परिहारक श्रीविमलाचल तीर्थेश योगत्रय से अभिवंद्य है. जिस परम पवित्र तीर्थपर, विद्याधर, चक्रवर्त्ती, भरत, नमि-विनमि राजर्षी शुक, शैलक, पंथक, रामचन्द्र, द्राविड़, वारिखिल्ल, नव नारद, पांडव, पुण्डरीक गणधरादि उत्तम पुरुष अनशन कर मोक्ष पधारें हैं-इस पावन कार्तिक पूर्णिमा के दिन दस क्रोड़ मुनिवर्य निर्वाण पद को प्राप्त हुवे; इस ही लिये यह शुभ दिन एक महान् पर्व के नाम से पहिचाना जाता है; इस दिन खास गिरीराज की यात्रा कर कृतार्थ होना चाहिये, कदाचित जाने का संयोग न बन सके तो शत्रुंजय गिरीके सन्मुख दिशा में जाकर चैत्यवंदन प्रभृति से भक्ति करनी चाहिये; जिससे धर्म की वृद्धि हो-इसही कार्तिक-

पूर्णिमा के दिन श्री सिद्धाचल तीर्थराजपर द्राविड़ और वारिखिल्ल ऋषीश्वर शिवपद को प्राप्त हुवे हैं; उनका संक्षिप्त चरित्र इस प्रकार है:—

द्राविड और वारिखिल्ल का चरित्र

इस ही अवसर्पिणी के तीसरे आरेमें, जम्बूद्वीप के दक्षीण भरतार्धगत मध्यखण्ड में ईक्ष्वाकु भूमिपटपर नाभिराजा नाम के सातवें कुलगर हो गये हैं, उनकी मरुदेवी महाराणी की रत्नकूक्षि से प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव स्वामी का जन्म हुवा, छ. लाख पूर्व * कुमारपद में रहे पश्चात् इन्द्रने सुनन्दा और सुमंगला के साथ विधिपूर्वक विवाह किया, प्रभु संसार–व्यवहार में प्रवृत्त हुवे, क्रमशः भरत–बाहुबलादि १०० पुत्र और ब्राह्मी–सुन्दरी २ कन्याएँ हुईं; २० लाख पूर्व व्यतीत होने पर राज्यासन को प्राप्त हुवे,

* ७० लाख क्रोड़ ५६ हजार क्रोड़ वर्ष; अर्थात् ७ नील ५ खर्व ६० अब्ज वर्ष का 'एक पूर्व' कहा जाता है

६३ लक्ष पूर्व राज्य पाला; अन्तमें अपना मूल विनीता नगरी का राज्य भारत को और तक्षशिला नगरी का राज्य बाहुबल को प्रदान किया; इसही तरह सर्व पुत्रों को अपने २ नामके देश बसाकर देदिये। इसमें द्रविड़ नामके पुत्रको द्रविड़देश और कंचनपुर नगर दिया और स्वामी ने स्वयं दीक्षा अंगीकार करली, अनुक्रम से चार घातिककर्मों का क्षयकर लोकाऽलोक प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया, कोड़ों देव समुदाय तथा अनेक साधु-साध्वी के साथ प्रभु भूमंडल पर विचरने लगे.

द्रविड़ नृपेन्द्र के क्रमशः दो पुत्र हुवे, बड़े का नाम द्राविड़ और छोटे का नाम वारिखिल्ल रख्वा; यौवन अवस्थामें दोनों का विवाह कर दिया, इन लोगों को भी पुत्र प्राप्ति हुई; वे द्वितीया की चन्द्रकला के समान बढ़ने लगे; इस प्रकार द्रविड़ राजा सुखपूर्वक अपना जीवन गुजारने लगा.

इस वख्त चक्रवर्ती पद के लिहाज़ से भरत महाराज ने ९८ भाईयों को आज्ञा पालन करने के लिये चतुर्मुख दूतके साथ फरमान पत्र भेजे; भरतेश्वर की चक्रवर्ती पदवी जानकर द्रविड़ प्रमुख सर्व भाईयों ने अपने २ पुत्र को राज्य-गद्दी देकर प्रभु के पास भवदुःख हरणी दीक्षा अंगीकार करली-द्रविड़

राजा ने अपने पुत्र द्राविड को राज्यासन दिया तथा लघुपुत्र वारिखिल्ल को एक लाख गांव पृथक् दिये और स्वय प्रभु के पास प्रव्रज्या लेकर उग्रतप द्वारा कर्मों को नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया–अब ये दोनों भाई अपना २ राज्य सानन्द पालने लगे.

एक समय द्राविड भूपति के दिल में यह खयाल हुआ कि–"मेरे पिताजी ने छोटे भाई को इतने अधिक ग्राम देकर सचमुच ही मेरे राज्य में न्यूनता की है, अस्तु अब भी मैं उसे हटाकर गाम छीन ले सकता हूँ," बस इस तृष्णा तरग में सेना सजकर भाई के साथ युद्ध करने को निकल पड़ा; वारिखिल्ल भी वडे भाई का वृतान्त जानकर ससैन्य सन्मुख आपहुचा– अपनी २ सीमा निरोधकर संग्राम आरम्भ किया, वारह वर्ष तक (क्वचित सप्त मास पर्यन्त) महायुद्ध चलता रहा, उसमें बहुत से हाथी घोड़े और मनुष्य मारे गये, वह युद्ध इतना भयंकर था कि उसमे रुधिर की नदी वह निकली थी

इन दिनों में किसी एक वख्त द्राविड राजा वनक्रीड़ा करने के लिये उद्यान में गया हुवा है; वहाँ आम–नींव–कदम्बकादि, गुल्मलता, पत्र, पुष्प, फलादि ऋद्धि से सुशोभित और सरोवर के झरणों से

भूषित एक आल्हादजनक वनप्रदेश देखा; इस ही वन के केन्द्रस्थान में एक तापसगण तपस्या करता हुवा नृपेन्द्र ने निहाला, घोड़े से नीचे उतर कर उन तपस्वियों को अभिवंदन किया और उचित स्थान पर बैठ गया; उस समय एक तापसअग्रेसर ने इस कदर धर्मोपदेश दिया—

गयकन्नचंचलाए अपरिचत्ताए रायलच्छीए ॥ जीवाकम्मकलिमल भरियभरातो पडन्ति अहे ॥ १ ॥

भावार्थ—हाथी के कान समान चंचल राज्यलक्ष्मी का त्याग नहीं करने से जीव कर्मरूप कादव के भार से भारी होकर अधोगति (नरक) में गिरता है.

इत्यादि संसार की असारता प्रदर्शित की, द्राविड़ राजा ने हृदयभेदक देशना सुनकर क्रोध को जलाञ्जली देदी और दिल में इस प्रकार विचारने लगा—"अहो ! धिक्कार हो ! मेरे राज्यलोभ को कि जिसके वशवर्ती होकर मेरे एकाकी भाई के साथ इस तरह युद्ध करने लगा हूं, थोड़े जीवन के लिये वैरभाव में मैं मदमस्त हुवा हूं; यह योग्य नहीं किया" इस प्रकार विचार कर द्राविड़ तापसों के पास से

उठा और अपने सहोदर भाई को क्षमाने के लिये सेनासमूह में दाखल हुवा, लघुभ्राता वारिखिल को यह समाचार मालूम होते ही सन्मुख आकर अपने बडे भाई के चरणों मे गिर पडा ! वृहद् भ्राता ने उसे उठाकर अपने स्नेह–आर्द्र हृदय से लगाया और अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसके सन्मुख देखकर कहने लगा—हे बधो ! यह समग्र राज्य तू ग्रहण कर मुझे तापसी दीक्षा लेलेना है," छोटे भाई ने कहा–"मुझे भी राज्य की लालसा नहीं है, मैं भी तुमारे साथ दीक्षा लेलेता हूं" बस दोनों भाइयों ने निश्चय कर समान भाग में आधा २ राज्य अपने पुत्रों को देकर पॉच २ क्रोड क्षात्रियों के परिवार सहित तपोवन में जाकर तापसी दीक्षा अगीकार करली, सूर्य के सन्मुख आतापना तपने लगे, कन्दमूल खाकर अपना निर्वाह करने लगे और वल्कल चीवर (वृक्ष की छाल के–भोजपत्र के कपड़े) धारण कर तपस्या करने लगे; इस प्रकार वहुतसा काल व्यतीत होगया

इस अवसर में कितनेक मुनिजन तीर्थयात्रा करने के लिये मार्गमें विहरते हुवे उसही वन में आचड़े, द्राविड और वारिखिल्लने मुनियों का भारी सत्कार किया, साधु महात्मा भी गमनागम की आलोचनाकर

भूमि प्रमार्जन पुरस्सर तरुवर के नीचे बैठे गये, उपरोक्त दोनों तपस्वी भी उनके सन्मुख बैठे, उस समय वृक्ष की शाखा पर से एक चकला मुनिराज के सन्मुख आकर गिरा, मुनिनायक ने उसका अल्प आयुष्य समझकर करुणावश उसे कान में नवकार मंत्र सुनाया और शत्रुंजय गिरिराज की महिमा कही; चकले ने अन्तः करण में धर्मोपदेश धारण किया, जिस के प्रभाव से पहिले देवलोक में देवपने उत्पन्न हुवा, एक मुहूर्त्त पीछे ही यह देव इन मुनिश्रीके समीप में आया और चरण कमल में नमस्कारकर सन्मुख बैठ गया, देवकी समृद्धि और दिव्यरूप देखकर तापस द्वयने सादर पूछा—" हे स्वामिन् ! अत्यन्त रूप और कान्तिधारक यह कौन किन्नर है ? " मुनिश्रीने फरमाया कि—" हालही में जो चकला अपने सन्मुख पड़ाथा वह मरकर नवकार मंत्र और शत्रुंजय गिरिकी महिमा श्रवण करने से प्रथम कल्प में देवपने उत्पन्न हुवा है, वहाँ से गिरिराज की यात्राकर वंदनार्थ यहाँ आया है " यह सुनकर दोनों तपस्वियों ने प्रार्थना की—" हे प्रभो ! विमलगिरिका किञ्चित् महात्म्य कृपाकर हमें सुनाओं ! " तब मुनीश्वरने इस प्रकार बयान किया—

इस जम्बूद्विप के भरतक्षेत्रान्तरगत सौराष्ट्र देशमे १०८ नाम से अलङ्कृत श्री शत्रुंजयगिरी (१) शत्रुजय (२) सिद्धागिरी (३) विमलगिरी (४) पुंडरीक (५) सुरगीरी नामक महातीर्थ हैं; इत्यादि (२१) नाम इस वख्त भी ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं, वह गिरीराज नाम निक्षेप से शाश्वता है, अनन्त काल की अपेक्षा इस शैलपर अनन्त जीव मोक्ष गये, अतीत चौवीसी के चरम तीर्थंकर श्री सम्प्रति जिनेश्वर के 'कदम्बक नाम के' प्रथम गणधर मोक्ष सिधाये, वर्तमान चौवीसी में–आदि तीर्थंकर श्रीआदीश्वर भगवान के प्रथम गणधर श्रीपुण्डरीकजी महाराज ५ क्रोड मुनिवरों के साथ चेत्रीपुनम को मोक्ष पधारे, इससे इस महान् तीर्थका नाम 'पुंडरीक गिरी' प्रसिद्ध हुवा–फागुण शुदि १० के दिन दो २ क्रोड़ परिवार के साथ नमि–विनमि विद्याधर राजर्षी शिवपुर पहुँचे–चैत्र शुद १४ के दिन नमि–विनमी राजा की ३४ पुत्रियाँ सिद्धपद को प्राप्त हुई इत्यादि पांडव प्रमुख अनेक मुनि महात्माओं इस परम पुनित गिरिराज पर मोक्ष पधारे हैं; इसहि लिये यह डूंगर शिवमान्दिर चढ़ने के लिये सोपान रूप कहा जाता है और पापरूप मल को साफ करने के लिये जल के समान हैं; अतः 'विमल गिरी' नाम से यह

तीर्थराज पहिचाना जाता है; जिन मनुष्यों ने मानवभव पाकर शत्रुंजयगिरी पर आदि जिनेश्वर की द्रव्य और भाव से पूजा न की हो, उसका भव पशु की तरह निष्फल समझना चाहिये और जिसने तीर्थबुद्धि से सिद्धाचलजी पर जाकर प्रभु-भक्ति की हो उसका जन्म सफल हुवा; ऐसा मानना चाहिये; यात्रा करने वाला स्वल्प समय में शिव-सुख को प्राप्त करता है; यह निर्विवाद पक्ष है.

इस कदर गिरिराज की महिमा श्रवण कर द्राविड़ और वारिखिल्ल पांच २ क्रोड़ मुनिपरिवार के साथ गुरुमहाराज की आज्ञा लेकर श्रीशत्रुंजय तीर्थ को वंदन करने के लिये प्रस्थान कर गये, मुनिसमुदाय भी अन्यत्र विहार कर गया–अब तापसद्वय अपने परिवार सहित क्रमशः गिरिराज पर चढने लगे, आरोहण समय उनने इस प्रकार उग्र अभिग्रह धारण किया कि—"जहाँतक हमें केवल ज्ञान (ब्रह्मज्ञान) उत्पन्न न हो तहाँतक आहार–पानी का सर्वथा त्याग हो" इस कदर निश्चय पूर्वक दोनों महात्मा अवग्रह धारणकर वहाँ पर चातुर्मास रहे, भाव से साधु–धर्म अंगीकार किया–आत्म–भावना भाते हुवे, उग्र तपस्या द्वारा शुक्लध्यान के योग से चतुर्मास के अन्तिम दिन यानी कार्तिक पूर्णिमा के रोज़ घनघाती

चतुष्कर्मराशी क्षयकर लोकोद्योतक 'केवल ज्ञान–केवल दर्शन' सर्व को उत्पन्न हुवे, लोकत्रय को 'हस्तरेखा-वत्' स्वत. देखने लगे; बहुत से भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर आखीर उस ही दिन शेष चार कर्मों को खपाकर द्राविड और वारिखिल्ल दस क्रोड मुनिवरों के साथ मोक्ष पधारे.

अतएव यह कार्तिक पूर्णिमा महापर्व कहा जाता है, अहो भव्यात्माओ ! इस दिन शत्रुंजयके सन्मुख जाकर महदाडम्बरसे रथयात्रा निकालकर स्नात्र महोत्सवादि करके महा कर्मराशी दूर करो और सामायिक, प्रतिक्रमण, पोषधादि धर्मक्रिया करके आजका दिन सफल करो, तथा त्याग–वैराग्यमें झीलकर उपरोक्त मुनिपुङ्गवों के समान शिवपद प्राप्त करो.

उपसंहार–महानुभावों ! इस कार्तिक पूर्णिमाके व्याख्यानमें तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजयकी महिमाका वर्णन करने के साथ मुख्यतः मुनिद्वय की आदर्श जीवनी प्रदर्शित की है; इस पर सम्पूर्ण पर्यालोचनकर इस पवित्र मार्ग का अनुकरण करना; वस श्रवण का यही परमार्थ है–श्रेयं भवतु सर्वेषाम

प्र श स्ति का.

अनल हस्ति गो मेदिनी (१९८३) अक्षय तीज सुजान ॥ कच्छदेश मंजल नगर । पूर्ण किया व्याख्यान ॥ १ ॥
सुखसागर भगवान गुरु । गणाधीश पदधार ॥ कृपासिंधु त्रैलोक्य गुरु । आनन्द कृति हितकार ॥ २ ॥



⊛ पांचवाँ कार्तिकपूर्णिमा व्याख्यान सम्पूर्ण ⊛

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



* छट्ठा श्रीमौनएकादशी व्याख्यान. *



मल्लि जिनेश्वर मैं नमु । आत्मार्थी गुरुराज ॥ एकादशी व्याख्यान की । रचना करूँ सुकाज ॥ १ ॥

अखिल जगद्वंद्य, अखण्डात्रिपुटीगुण धारक, परमब्रह्म परमात्मा को सादर वदनकर तथा स्वार्थ त्यागी, परमार्थजीवी मुनिजन को प्रणमनकर यह कल्याण मार्ग प्रकाशक " श्रीमौन एकादशी व्याख्यान " संस्कृत परसे देवनागरी भाषा में गुम्फित करता हूँ, धर्मानुरागियो ! इस विमल व्याख्यान को साद्योपान्त श्रवणकर अपने जीवन को सफल करना.

मूल–मंत्राण.

मागसर शुद एकादशी के दिन देवाधिदेव श्रीअरनाथ भगवान् की प्रव्रज्या हुई तथा नमिनाथ स्वामिको लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान उत्पन्न हुवा, एवं मल्लि जिनेश्वर का जन्म–दीक्षा तथा केवल कल्याणक हुवा; इस तरह इस शुभ दिन में पंचकल्याणक हुवे–प्रति क्षेत्र के पांच २ गिनते हुवे ५ भरत और ५ ऐरवत इस दस क्षेत्रों के ५० कल्याणक होते है और कालत्रय की अपेक्षा १५० कल्याणको से यह पर्व भूषित है; अतएव महापुरुषों की यह मान्यता है कि इस दिन उपवास व्रत करने से डेढसो उपवासों के समान फल होता है.

® पर्व की संक्षेप विधि ®

एकादशी पर्व के दिन जघन्य मौन यानी पठन–पाठन–चिन्तवनादि सिवाय सर्वतः वाणी का संयम रखकर चौविहार उपवास पूर्वक अष्टप्रहरी पौषध व्रत में रहना चाहिये, पारणे के दिन जिनमंदिर में जाकर भावपुरस्सर पूजा करके प्रभु के आगे फलादि चढाने का विधान करना उचित है तथा गुरुमहाराज के समीप जाकर ज्ञान पूजन करनी चाहिये, इस दिन एकाशन का व्रत कर मुनिराज का सुपात्र संविभाग करके * पारणा करना युक्त है; यह व्रत इग्यारह वर्ष और इग्यारह मास पर्यन्त किया जाता है, बारहवे वर्ष की पूर्णाहूती में गुरुमहाराज के पास सविधि व्रत पालकर प्रभु के सन्मुख विविध प्रकार के धान्य–फल–मिष्टान इत्यादि सुन्दर वस्तुएँ इग्यारह २ प्रमाण में चढाना विधिमार्ग है, कमसेकम ग्यारह अंगरूप धर्मशास्त्र लिखाना चाहिये तथा ग्यारह श्रावकों को भोजन कराना समुचित है; तथा ज्ञान–दर्शन–चारित्र सम्बंधी

* मुनि महाराज की अविद्यमानी में व्रतधारी वगैर. श्रावक का भी 'अतिथि संविभाग' हो सकता हैं

ग्यारह २ वस्तुएँ रखनी चाहिये. इस तरह जघन्य उद्यापन करके अपने व्रत को उज्ज्वल बनाना चाहिये, उद्यापन की विशेष विधि गुरुगम्य से जानना.

❀ पर्व सम्बंधी पृच्छा और उसका उत्तर ❀

एक समय ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे आबाल ब्रह्मचारी बावीसवें तीर्थंकर श्रीनेमीश्वर भगवान् द्वारिका नगरी के बाहर आकर समवसरे परमात्मा को वन्दन करने के लिये श्रीकृष्ण वासुदेव आये, विधि सहित अभिवंदन करके विनम्रभाव से प्रभु को पूछने लगे—हे स्वामिन् ३६० दिन में सारभूत कौनसा दिन है, वह अनुग्रह पूर्वक मुझे प्रदर्शित करो कि जिसको आराधनकर व्रत रहित मेरा जीवन निस्तरण हो जाय ! इस प्रार्थनापर भगवन्तने फरमाया—तुम मागसर शुद इग्यारस का आराधन करो. कहा गया है कि:—

अपि मिथ्यादृशां मान्या। सा मौनैकादशीतिथिः॥ मार्गशीर्षाख्यमासस्य। शुक्लपक्षे प्रकीर्तिता ॥ १ ॥
तत्र पुण्यकृतं स्वल्प–मपि प्रौढफलं भवेत् ॥ तस्मादाराधनीया सा। विशेषेण विशारदैः ॥ २ ॥

सर्वेभ्योऽपि च पर्वेभ्यः। पर्वपर्युषणाह्वयम् ॥ दिनेभ्योऽप्यखिलेभ्योऽय। तथा मुख्योऽस्ति वासरः ॥ ४ ॥
श्रमणैः श्रमणीभिश्च। श्रावकैः श्राविकादिभिः ॥ धर्मकर्मविधातव्य-मस्मिन् दिने विशेषतः ॥ ४ ॥

भावार्थ—मागसर शुद ११ का दिन 'मौन एकादशी' के नामसे मशहूर है और वह अन्य तीर्थियों को भी मान्य है १—उस दिन स्वल्प सुकृत करने से भी महान् फल होता है; अतएव विद्वज्जनों को इस पर्व का विशेष आराधन करना चाहिये २—जिस तरह सर्व पर्वों में पर्युषण पर्व विशिष्ट कहा जाता है; उसही तरह समस्त दिनों के अन्दर यह एकादशी का दिन मुख्य है.—३ साधु—साध्वी—श्रावक—श्राविका को इस दिन विशेष धर्म करणी करनी चाहिये —४

इस आख्यान को श्रवणकर श्रीकृष्ण बोले। हे विभो! इस परम दिवस की आचरणा क्या कोइ किसी ने प्राचीन काल में की है और उससे कोइ फल प्राप्त किया है क्या? परमात्मा ने फरमाया—हाँ! सुव्रत सेठने इस व्रतका आराधनकर परम फल प्राप्त किया है, उसका बयान तुम सावधान होकर सुनो—

❀ सुव्रत सेठका दृष्टान्त. ❀

धातकी खण्ड के अन्दर इषुकार पर्वत से पश्चिम दिशामें विजय नामका एक नगर था, वहाँ पर पृथ्वीपाल नामक राजा राज्य करता था, उसके औदार्य–चातुर्य–शील आदि गुणों से सुशोभित एक चन्द्रवदना चन्द्रवती नामकी कान्ता थी; उसही नगर में षट्विध आवश्यककर्ता, जिनेश्वर की भक्ति करने-वाला, व्यवहारीशिरोमणि सत्पुत्रयुक्त 'सूर' नामका एक धनाढ्य सेठ रहता था, वह वृद्धावस्था में एक समय गुरुदेव के पास जाकर भक्तिपुरस्सर पूछने लगा–हे भगवन्! आप इस प्रकार का मुझे कोइ धर्म बताओ कि स्वल्प मात्र करने से कर्म क्षय हो जांय? गुरुमहाराज ने फरमाया–ग्यारस का व्रत आराधन करो; यह आदेश शिरोधारकर सेठने ग्यारह वर्ष और ग्यारह मास + तप किया तथा व्रत के समाप्त होने

+ जघन्य से ११ मास पर्यन्त एकादशी पर्वकी आराधना की थी– इत्यपि पाठः.

पर विधि सह उद्यापन किया, उजमने के पन्द्रवें दिन अकस्मात् शूल रोगसे मरकर ग्यारवें आरण्य नामके देवलोक में २१ सागरोपम की आयुष्यवाला देव हुवा–देवलोक से च्यवकर सौर्यपुर मे समृद्धिदत्त व्यापारी के घरमें प्रीतिमती प्रियाकी रत्नकूक्षिसे पुत्रपने उत्पन्न हुवा, नाला गाडने के गड्ढेमें से निधान निकला, यह बधाई पवनकी तरह सर्वत्र विस्तृत हो गई, सेठने दस दिन तक जन्म-महोत्सव किया, बारवें दिन पुत्रका नाम ' सुव्रत ' स्थापन किया कारण कि गर्भावस्थामें इस की माता को व्रत की इच्छा हुई थी, पुत्रका नाम गुणनिष्पन्न था, किन्तु ' मंगलादि ' की तरह निरर्थक नहीं था—

अब श्रेष्ठीपुत्र सुव्रत पांच धायमाता * से लालन–पालन होता हुवा क्रमशः आठ वर्ष का हुवा तब पिताश्री विचार करने लगे—

रूपलावण्यसंयुक्ता । नरा जात्यादि संभवाः ॥ विद्याहीना न राजन्ते । ततोऽमुं पाठयाम्यहम् ॥ १ ॥

---

* (१) स्तनपान कराने वाली (२) स्नान-मजन करानेवाली (३) वस्त्र-अलङ्कार पहनानेवाली (४) बाल क्रीड़ा करानेवाली (५) गोदमें बैठानेवाली ये पाच ' धायमाताएँ ' कही जाती हैं

भावार्थ—रूप और कान्ति से संयुक्त उत्तम जातिमें उत्पन्न हुवे मनुष्य विद्याहीनता से भूषित नहीं होसकते; अतः मेरे इस पुत्र को अवश्य पढाना है.

ऐसा निश्चयकर श्रेष्ठीवरने महोत्सव के साथ पंडित के पास ७२ कला पढने को भेजा, थोड़े ही समय में सकल कलाओं में पारांगत होगया, षट् आवश्यकरूप सूत्र, श्रावकाचार वगैरः भी बखूबी शीख गया था, पिताजी ने यौवनावस्थामें वड़े उत्सव के साथ (१) श्रीकान्ता (२) पद्मा (३) लक्ष्मी (४) गंगा (५) पद्मलता (६) तारा (७) रंभा (८) पद्मनी (९) गौरी (१०) गांगेया (११) रति; इस तरह क्रमशः ग्यारह श्रीमन्तों की कन्याओं के साथ विवाह कराया, श्रेष्ठीपुत्र इन ललनाओ के साथ आनन्द पूर्वक दोगुन्दक देवके समान समय व्यतीत करने लगा.

अवसर प्राप्त होने पर सेठने अपना गृहकार्य सुव्रत को सिपुर्द करके दीक्षा अंगीकार करली, सम्यक् प्रकार से चारित्र पालकर आख़ीर अनशन धारणकर स्वर्गवास में प्राप्त हुवा—अब श्रेष्ठी सुव्रत ग्यारह सुवर्णकोटीश्वर बना, राज्यमान्य नगर सेठकी पदवी से अलंकृत हुवा, दानवीर, सत्यवादी और अतिप्रतापीने

प्रख्यात हुवा, यह सर्व गतभव में आराधित एकादशी तपका ही प्रभाव था, कालान्तर से ग्यारह ललनाओं से (११) पुत्र प्राप्त हुवे और उनके भी पुत्र-पौत्रादि अतिशय परिवार की वृद्धि हुई-एक वख्त नगर के उद्यान में धर्मघोषाचार्य महाराज अपने शिष्यपरिवार समेत पधारे, राजा, सेठ और प्रजाजन मुनीश्वर के पास वदनार्थ गये, अवसर को पाकर गुरुमहाराज ने धर्मदेशना दी—

यद् दूरं यद् दुराराध्यं । यच्च दूरे व्यवस्थितम् ॥ तत् सर्वं तपसा साध्य । तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ १ ॥

भावार्थ—जो पदार्थ अपने से दूर है, दुःख से आराधन किया जासकता है और दूर जिसकी व्यवस्था है; वह सब तपसे साध्य हो जाता है; अतएव तपस्या अत्याज्य है

भव्यात्माओ ! पंचमी के तपसे पांच ज्ञानकी प्राप्ति, अष्टमी के तपसे अष्ट कर्मों का नाश, एकादशी के तपसे ग्यारह अङ्गों का सुखाववोध, चौदस के तपसे चौदह पूर्व की आप्ति और पौर्णमासिक तपस्या से सम्पूर्ण आगम की उपलब्धि होती है; इस प्रकार तपकी महिमा सुनकर सुव्रत सेठको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुवा, पूर्व भव में एकादशी तपकी आराधना जानकर गुरुमहाराज के पास से जावजीव पर्यन्त

एकादशी का व्रत आदरसह ग्रहण किया। गुरुमहाराज ने फरमाया—हे श्रावकवर्य ! पूर्व भव में आराधित एकादशी व्रत के प्रभाव से निर्मल ज्ञानकी तुझे प्राप्ति हुई, उजमने के प्रताप से ग्यारह सुवर्ण कोटिका अधीश्वर बना, नगर सेठका पदक, प्रभुत्व, अधिकारत्व मिला, राजमान्य और निर्मल यशस्वी हुवा; यह सर्व व्रत का ही अतिशय प्रभाव है, इसलिये व्रत को अन्तःकरण से आराधन करना; इतना कहने के पश्चात् 'धर्मलाभ' रूप आशिर्वाद देकर गुरुराज अन्यत्र विहार कर गये. सुव्रत सेठ कुटुम्ब सहित एकादशी के दिन उपवास पूर्वक अष्टप्रहरी पौषध आनन्द पूर्वक करने लगा, लोगों में मौन एकादशी पर्व की प्रसिद्धि हुई, कारण कि 'वृद्धमान्यं सर्वे मानयन्ति' यानी बड़े लोग जिसको माने उसे सर्व मानते हैं; इस प्रकार अनेकानेक मनुष्य इस पर्व का आराधन करने लगे.

किसी एक वख्त पर्व के दिन सेठने कुटुम्ब सहित पौषधव्रत लिया था, रात्रिमें सर्वजन काउसग्ग ध्यान में रहे हुवे थे, उस दिन चौर लोगों ने विचार किया कि "आज़ सेठ बोलेंगे नहीं और चुराती हुई वस्तुओं को देखेंगे भी नहीं तो आज़का दिन बड़ा लाभदायक है" ऐसा निश्चयकर चौरों की धाड़ने

सेठके घरमें प्रवेश किया, दीपक का प्रकाश करके देखने लगे तो सर्वत्र सुवर्ण के ढिगले देखने में आये, ज्योंही धन लेने को गये कि शासनदेवी ने तमाम चौरों को स्तंभित कर दिये, इस ही लिये निरन्तर शासनदेवीं पूजी जाती है और प्रतिक्रमण में काउसग्ग द्वारा आराधन की जाती है—प्रातः काल में चोरी करने को आये हुवे, शस्त्र सज्जित, पृथ्वी से कीलित चौरों को देखकर बहुतेरे लोग इकट्ठे होगये, इस वख्त राज–सुभट चारों ओरसे चौरों को घेरकर खडे हैं, सुव्रत सेठने सकुटुम्ब स्थापनाचार्यजी महाराज के सन्मुख पौषध पाला, बाद उपाश्रय जाकर गुरुमहाराज को सादर–सविनय वंदन किये; पश्चात् व्याख्यान सुनकर घर पर आया, वहाँ चौरों को देखकर बोला—" मा राजा चौरान् मा मारयतु " अर्थात् राजा चौरों को मत मारो, इस दृष्टिसे मौन किया, तब नगर रक्षकादि समग्र सुभटों को भी शासनदेवी ने स्तम्भित कर दिये; इस आश्चर्यजनक घटना को सुनकर दोपहर के समय नृपेन्द्र सेठके घर पर आया, सुव्रतने आदरसह भेटना किया और राजा के पूछने पर सर्व वृतान्त कह सुनाया, नरेन्द्र प्रसन्न हुवा और कुछ वरदान मांगने का आग्रह किया, स्वार्थत्यागी, दयाधर्मी सेठने चौरों का अभयदान मांगा, पृथ्वीपति ने सहर्ष स्वीकार

किया, शासनदेवी ने स्तंभित पुरुषों को और चोरों को मुक्त किये; ये सब होजाने के पीछे श्रेष्ठीवर ने शान्तिसे पारणा किया–पौषध के किसी एक दिन नगर में अग्निका उपद्रव हुवा, लोग इधर–उधर भागने लगे, मगर सेठ अपने व्रत में निश्चल रहा; सेठके हाट–हवेली और धर्म स्थान के अलावा करीब २ समग्र नगर जल गया था. प्रातःकाल में समुद्रद्वीप की तरह इसके मकानों को देखकर तमाम नगरवासी सेठकी इस प्रकार प्रशंसा करने लगे—

सत्वेन धार्यते पृथ्वी । सत्वेन तपते रविः ॥ सत्वेन वायवो वान्ति । सर्वं सत्वे प्रतिष्ठितम् ॥ १ ॥
अहो धर्मस्य माहात्म्य-मस्याहो दृढता व्रते ॥ पालयेद् व्रतमेवं यो । द्वेधाप्यस्य शिवं भवेत् ॥ २ ॥

भावार्थ—सत्वसे धरणी धारण की गई है, सत्व से सूर्य तपता है और सत्व से पवन बहता है; इतना ही नहीं किन्तु जगत् की तमाम पदार्थों सत्व पर ही अवलम्बित हैं. १. अहो ! धर्म की महिमा; अहो ! व्रत में इसकी दृढता; जो इस प्रकार अपने व्रत को पालन करे उसका अत्र–परत्र कल्याण होता है. २.

धर्म के प्रभाव से ही सर्व सामग्रियों की प्राप्ति होती है. कहा गया है—

धर्माज्जन्मकुले शरीरपटुता–सौभाग्यमायुर्बलं । धर्मेणैव भवन्ति निर्मलयशो–विद्यार्थसम्पत्तयः ॥
कान्ताराच्च महाभयाच्च सततं–धर्मः परित्रायते । धर्मः सम्यगुपासितो हि भवति–स्वर्गापवर्गप्रदः ॥ १ ॥

भावार्थ—धर्म से उत्तमकुल, शारीरिक निरोगता, सौभाग्य, आयुष्य, बल, निर्मलयश, विद्या, धन, सम्पत्ति, ये सर्व धर्मही के प्रभाव से मिलते हैं, तथा जगल के विषम भयसे धर्म ही रक्षा करता है, यहाँ तक कि इसकी सम्यग् उपासना करे तो यहाँ परमधर्म स्वर्ग और मोक्षसुख का देनेवाला है

एकादशी का व्रत पूर्ण होने पर श्रेष्ठिवर्य ने इस प्रकार महोत्सव उजमना किया–मोति, रत्न, शख, प्रवाल, सुवर्ण, रजतमय तीर्थंकरो के आभूषण तथा भाजन कराये, तांबा, पीतल, जसद, कांसी प्रमुख के पूजा सम्बंधी सामान्य उपगरण कराये, सुन्दर वस्त्रों के अंगलुछन चढाये, नानाप्रकार के धान्य अनेक विध पक्वान, श्रीफल, दाख, आम्रादि फल, सोने–चांदी के पुष्प, अशोक, चंपा, गुलाब वगैरः के सुगधी पुष्प

और समग्र ग्यारह २ वस्तुएँ योग्यता पूर्वक प्रभुको चढ़ाई; ग्यारह अंग लिखाये; इसही तरह ज्ञानोपगरण और चारित्रोपगरण की ग्यारह २ वस्तुएँ रक्खीं; इस प्रकार सविस्तार उद्यापन कर अपना मानव जीवन सार्थक किया.



सेठ का चारित्र ग्रहण और मोक्षगमन.

वृद्धावस्थ में एक दिन सेठ विचारने लगा कि मैंने जन्मपर्यंत श्रावकधर्म पाला है और उद्यापन सहित मौन एकादशी का व्रत आराधन किया है; यह असार संसार पहिले वा पिछे छोड़ने लायक है; अतः इस समय यदि कोइ सुगुरु का संयोग मिलजायतो प्रव्रज्या ग्रहणकर कृतार्थ हो जाउं 'जो कछु इच्छा होइये मन मांहीं तो प्रभु कृपा कुछ दुर्लभ नाहीं' बस इस नियम के अनुसार प्रातःकाल में ही "तरण–

तारण-समर्थ, चतुर्ज्ञान धारक, गुणसुन्दरसूरि महाराज पधारे हैं, " ऐसा श्रवण किया, सेठके दिलमें हर्ष न समाया, शीघ्रही सकुटुम्ब महात्मा को वंदन के लिये गया, नगर के भी बहुतसे लोग गये थे, वदन-नमस्कारकर सब लोग अपने २ योग्य स्थानपर बैठ गये, गुरुमहाराज ने इस प्रकार धर्मदेशना दी—

अहो धर्माभिलाषियों ! परमात्मा का फरमान किया हुवा अहिंसादि पंच महाव्रत रूप, सतरह भेद संयम तथा दसविध यतिधर्मवाला, विनय-विवेकादिरूप साधुधर्म पवन वेगकी तरह शीघ्रही मोक्ष पहुँचा देता है तथा बारह व्रतात्मक श्रावकधर्म अश्ववेगकी तरह मुक्ति लेजाता है; मतलब कि अल्पकाल में ही सर्व दुःख का अन्त करनेवाला ' साधुधर्म ' अवश्य सेवन करना चाहिये, देखो ! महत् पुरुषो ने चारित्र की आदर्श महिमा इस प्रकार फरमाई है:—

चरित्ररत्नान्न परं हि रत्नं । चारित्रवित्तान्न परं हि वित्तम् ॥ चरित्रलाभान्न परो हि लाभ-श्चारित्रयोगान्न परो हि योगः ॥ १ ॥
दीक्षा गृहीता दिनमेकमेव । येनोग्रचित्तेन शिवं स याति ॥ न तत् कदाचित्तदवश्यमेव । वैमानिकः स्यात् त्रिदशप्रधानः ॥ २ ॥

भावार्थ—चारित्ररत्न से बढ़कर कोइ रत्न नहीं, चारित्र धनसे अधिक कोइ धन नहीं, चारित्र लाभ से ज्यादे कोइ लाभ नहीं और चारित्र योगसे अतिशय कोइ योग नहीं. १, जिसने उग्र चित्तसे मात्र एकही दिनकी दीक्षा ग्रहण की हो, वह शिवपद को प्राप्त करता है, कदाचित (सराग संयम के कारण) ऐसा न बने तो प्रधान वैमानिक देवलोक तो अवश्य पाता है.

इत्यादि देशना सुनकर सुव्रत सेठ बोला–हे भवतारक! मैं संसार अटवी से घबरागया हूँ, इसलिये घरका सर्वकार्य पुत्र को समर्पणकर आपश्रीके पास दीक्षा अंगीकार करूँगा; गुरुराज ने फरमाया 'जैसा सुख हो वैसा करो–प्रमाद बिलकुल मत करो!' तब सेठने घरपर जाकर अपने कुटुम्ब–परिवार को भोजन कराया और पुत्रादिक की अनुमति लेकर ग्यारह स्त्रियों सहित दीक्षा अंगीकार की; तपस्या से काया क्षीण करके ग्यारह स्त्रियों (आर्याओं) ने केवलज्ञान उत्पन्न किया और एक महिने का अनशन कर क्रमशः मुक्तिपद को प्राप्त हुई; अब सुव्रत मुनि साधुधर्म के अनुसार विचरने लगे. दशवैकालिक के चौथे अध्ययन में मुनियों के लिये ऐसा फरमान किया है—

जय चरे जयं चिट्ठे। जयमासे जयं सए॥ जय मुजतो भासतो। पावकम्मं न बंधई ॥ १ ॥

भावार्थ—यत्नासे चले, यत्नासे खड़ा रहे, यत्नासे बैठे, यत्नासे शयन करे; यत्नासे खाता हुवा और यत्नासे बोलता हुवा प्राणी पापकर्म का बन्धन नहीं करता

इस कदर पवित्र चारित्र पालते हुए छट–अठम वगैरा अनेक तपस्या की; उसकी सख्या इस प्रकार है—

जनिते द्वेशते षष्ठे। अष्टमानां शत तथा॥ चतुष्टय चतुर्मास्या। एक षाण्मासिकं तपः ॥ १ ॥
स मौनैकादशीतिथ्या-स्तपस्तपन् विशेषतः॥ पाठको द्वादशाङ्गीनां। शुद्धां दीक्षामपालयत् ॥ २ ॥

भावार्थ—दोसो छट, एकसो अठम, चार चतुर्मासी और एक छमासी तपस्या. १- सुव्रतमुनि विशेष कर मौनएकादशी को तपस्या में तपता हुवा द्वादशाङ्गी का ज्ञाता हुवा और शुद्ध दीक्षा पालने लगा.

एक वख्त इग्यारस के दिन सुव्रत मुनि मौनमें रहे हुवे हैं, इनकी परीक्षा के लिये किसी एक मिथ्यात्वी देव ने एक अन्य मुनि के कानों में महति वेदना उत्पन्न की, अनेक उपचार करने पर भी मुनि की वेदना शमन न हुई, तब उस देव ने साधु के समक्ष इस कदर कहा—हे महानुभाव ! यह तुमारा रोग सुव्रत मुनि की औषधी से नाश होगा; अर्थात् मुनि अपने स्थान से बहार निकलकर इलाज करें ! श्रमण ने जाकर सुव्रत को आग्रहपूर्वक प्रार्थना की; मगर मुनिपुङ्गव मौन होने के कारण अपने आश्रम से बाहर नहीं जा सकते थे; अतः कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया, इस वख्त देव की प्रेरणा से व्याधिग्रस्त साधु ने सुव्रतमुनि के मस्तकपर सख्त मार मारी; इससे अत्यन्त वेदना उत्पन्न हुई, तदपि मोक्षाभिलाषी मुनिसत्तम असह्य दुःख को सहन कर इस प्रकार चिन्तन करने लगे—

अर्हन्तो भगवन्तो ये। साधवो गणधारिणः ॥ इन्द्राश्चन्द्रा दिनेन्द्राश्च। नागेन्द्रा व्यन्तरेन्द्रकाः ॥ १ ॥
सचक्रवर्तिनो वासु-देवाः प्रतिनरायणाः ॥ बलदेवा नराधीशा। मानवा अपरेऽपि च ॥ २ ॥
कर्मणा पापिनाऽनेन। ते सर्वेऽपि विडम्बिताः ॥ कियन्मात्रो वराकोऽहं। पुरस्तात् तस्य कर्मणः ॥ ३ ॥
अरे जीव ! सहस्व त्व-मुदितं कर्म तेऽस्ति यत् ॥ तद् भोगेन विना नैव। प्रक्षीयते कदाचन ॥ ४ ॥

लद्ध अलद्धपुव्व । जिणवयणसुभासिअं अमियभूय ॥ गहिय सग्गइ मग्गो । नाहं मरणाउ बिभेमि ॥ ५ ॥

भावार्थ—" अहो ! अरिहन्त भगवन्त को, गणधरों को मुनिजनों को. इन्द्र–चन्द्र–नागेन्द्र–दिनेन्द्र–व्यन्तरेन्द्रों को तथा चक्रर्ति–वासुदेव–प्रतिवासुदेव–बलदेव–नरेन्द्रों को और अन्य पुरुषो को भी इस चंडाल कर्मने विडम्बनासे विडम्बित किया है, तो मुझ सरीखे वराक की इसके सामन क्या गिनती है? १–२–३ अतएव हे जीव ! तूं सहन कर, उदयमान कर्म भोग विना कदापि क्षय नहीं होसंकते. ४. हे आत्मन् ! पहिले कभी प्राप्त नहीं हुवे ऐसे अमृतमय सुन्दर जिनवचन तुझे प्राप्त हुवे हैं; इनसे सद्गतिका मार्ग में प्राप्त करूंगा; अतएव मैं मरण से कदापि नहीं डरता " ५

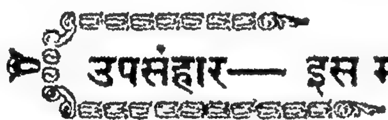
ऐसी हिम्मत रख ओर तपस्या में अपनी सर्व शक्ति खर्च करदे, तपसे ही कर्म नाश होते हैं कहा है—

तपस्तीव्रघरट्टोऽयं । क्षमामर्कटिकान्वितः ॥ धृतिहस्तो मनः किलिः । कर्मधान्यानि चूरयेत् ॥ १ ॥

भावार्थ—उग्रतप यह एक घट्टा है, उसमे क्षमा रूपी मकडी है, धैर्यरूप हाथा है मन रूपी खीली है, इससे कर्म रूप अनाज़ चूर्ण किया जाता है

देव अपने विभंग ज्ञानसे मुनि महाराज को अकम्पित जानकर विशेष उपसर्ग करने लगा; इधर मुनिश्री क्षमासागर में लीन हुवे और क्षेपक श्रेणी पर चढकर लोकालोकप्रकाशक 'श्रीकेवलज्ञान' प्राप्त किया, कितनेक समय तक भव्यात्माओं को उपदेश देकर अनन्तानन्द स्वरूप मोक्ष नगर को पहुँचे.

इस प्रकार श्रीनेमिनाथ स्वामी के मुख से एकादशी का महात्म्य सुनकर श्रीकृष्ण वासुदेव प्रभृति इस पर्व में आदरवान् हुवे; इससे इस अवनितलपर मौनएकादशी की महति महत्ता प्रसिद्ध हुई.

 उपसंहार— इस मौन एकादशी के आख्यान में कल्याणकों की महिमा, व्रत की संक्षिप्त विधि और फल प्रकाशित किया गया है, तथा इसके चरितार्थ में 'सुव्रत सेठ' का एक प्रभावशाली दृष्टान्त उल्लेख किया गया है, उसपर पूर्ण मथनकर धर्मजिज्ञासुओं! इस पर्व का आराधन करना; बस श्रवण का यही फलितार्थ है—कल्याणमस्तु समस्तानाम्.



⊛ प्रशस्तिका ⊛

अनल अष्ट वसु चन्द्रमा (१९८३) गुरुदेव जयन्ति सार * ॥ पूर्ण किया मंजल नगर । आख्यान श्रीकार ॥ १ ॥
सुरस भगवान गुणज्ञ गुरु । त्रैलोक्य गुरु गणधार ॥ आनन्दरत्नाकर वदे । रचना शिवपद सार ॥ २ ॥

⊛ छट्ठा मौनएकादशी व्याख्यान सम्पूर्ण ⊛

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

* गुरुदेव ' श्रीजिनदत्त सूरीश्वरजी का जयन्ति दिन आषाढ शुद ११

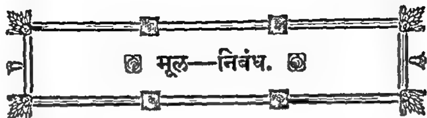


❋ सातवाँ—श्रीपौषदशमी व्याख्यान ❋



पार्श्वप्रभु वंदन करी । नमन करी गुरुदेव ॥ पौषदशम रचना करूं । व्याख्यान हितमेव ॥ १ ॥

सकल गुणवरिष्ठ, त्रिजगत्पूज्य, अखण्डसुखानुभवी, परमपरमात्मा को प्रणमन कर तथा त्रिविध तापहारी, रत्नत्रयाराधक, आत्मानुभवी, परमपूज्य सन्त गुणवन्त को वंदन करके यह सुबोध प्रदायक "श्रीपौषदशमी का व्याख्यान" संस्कृत परसे भारतीय भाषामें रचना करता हूँ; भव्य श्रोताजनो ! इस पावन व्याख्यान को शान्ति पूर्वक श्रवणकर कृतार्थ बनना.



मूल—निबंध.

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगध देशान्तरगत चंपापुरी नामकी एक सुमनोहर नगरी थी, उसके समीप पूर्णभद्र नामक यक्षके आश्रित उपवनमें चरम तीर्थंकर श्रीमहावीर देव एकदा समवसरे; प्रभुको वंदनार्थ तथा धर्मोपदेश श्रवणार्थ मगधाधीश्वर श्रीश्रेणिक राजेन्द्र प्रभृतिका आगमन हुवा, परमात्मा को तीन प्रदक्षिणा देकर सादर वंदन नमस्कार किया और अपने २ योग्य स्थानपर बैठ गये; तब देवाधिदेव ने संसार सागर में डूबे हुवे प्राणियों के लिये भवोद्धारिणी धर्मदेशना प्रारंभ की—

❁ परमात्मा की देशना ❁

जीवदया रमिज्जइ । इंदियवग्गो दमिज्जइ सयावि ॥ सच्चं चेव वदिज्जइ । धम्मस्स रहस्समिणमेव ॥ १ ॥

भावार्थ—जीवदया में सर्वदा रमण करे, इन्द्रिय समूह का दमन करे, सत्य संभाषण करे; यह धर्म का रहस्य समझना.

इत्यादि देशना को सुन कर कितनेक भद्रजीवों ने श्रावकव्रत और कितनेक ने साधुधर्म अंगीकार किया तदन्तर श्रीगौतम स्वामी ने वीरप्रभु को अभिवंदन कर नम्र पृच्छा की। हे स्वामिन् ! कृपा कर पौष-दशमी का महात्म्य प्रकाशित करो ! तब श्रीवर्धमान स्वामी ने फरमाया। हे इन्द्रभूते ! पौष विदि दशमी के दिन 'श्रीपार्श्वनाथ का जन्म कल्याणक' हुवा है; उस दिन दोनों टाइम प्रतिक्रमण देववंदन तथा भूमि-शयन करना चाहिये, ब्रह्मचर्य पालना, जिनमंदिर में अष्टप्रकारी, सतरहभेदी तथा स्नात्रादि पूजा पढाने का विधान जानना; पश्चात् गुरुके पास धर्म श्रवण करना, अनन्तर घरपर जाकर एकाशन करना; दशम के व्रतवाले को यथा शक्ति नौम और इग्यारस को भी एकासन करना विधिमार्ग हैं; इस तरह दस वर्ष पर्यन्त यह तपस्या करनी चाहिये, त्रिकरण शुद्धि से इस पर्वका आराधन करनेवाला इस भव में धन-धान्य-पुत्र कलत्र वगैरः के सुख को प्राप्त करता है और परभव में देवेन्द्रादि की ऋद्धि प्राप्त कर क्रमशः निर्वाणपद

प्राप्त करता है, श्रीभगवन्त का यह उपदेश श्रवणकर श्रीगौतम गणधर ने सविनय पूछा–हे प्रभो ! आगे इस पर्वका क्या कोई किसीने आराधन किया है और उससे क्या कोई फल उपलब्ध हुवा है ? जिनेन्द्र देवने फरमाया–मेरे और पार्श्वनाथ के दरमियान 'सूरदत्त' सेठने इसका अच्छी तरह आराधन किया है, उसका आख्यान इस प्रकार है—

सूरदत्त सेठ का आख्यान

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रमें सुरेन्द्रपुर नामका एक नगर था, उसमें नरसिंह राज राज्य करता था, उसके शीलालंकारिधारणी गुणसुन्दरी नामकी पट्टरानी थी, उसही नगर में सूरदत्त सज्ञक एक सेठ वसता था, उसकी एक पतिव्रत धारण करने वाली शीलवती नाम की पत्नि थी, श्रेष्ठी यद्यपि कुबेर की तरह धनाढ्य और यशस्वी था, मगर मिथ्यात्व वासना से वासित था, सांख्यमतानुसार त्रिदंडियों का भक्त होने से

शैव धर्म के आराधन में निपुण था; अतएव परम पवित्र जैन धर्म से अनभिज्ञ था, इसही लिये योग्या-योग्य विचार से पराङ्गमुख था, यथाहि—

न देवं नादेवं न शुभगुरुमेवं न कुगुरुं। न धर्मं नाधर्मं न गुणपरिणद्धं न विगुणम् ॥
न कृत्यं नाकृत्यं न हितमहितं नाऽपि निपुणं। विलोकन्ते लोका जिनवचनचक्षुर्विरहिताः ॥ १ ॥

भावार्थ—जिनेश्वर के वचनरूपी नेत्रों से विहीन जन सुदेव और कुदेव, सुगुरु, और कुगुरु धर्म और अधर्म. गुण और अवगुण, कृत्य और अकृत्य, हित और अहित तथा निपुणता को देखते नहीं हैं.

वह सेठ 'राहु चन्द्रवत्' मिथ्यात्व से घिरा हुवा था; अतएव प्रभु की वाणी कदापि श्रवण नहीं करता. "जीव और शरीर को एक ही मानता था," लेकिन् राज्यमान्य होने से बहुमान्य हो गया था; इस तरह कितनाक काल बीत जाने पर श्रेष्ठी ने चार प्रकार के क्रयाणे (गणिम—धरिम—मेय—परिच्छेद) भरकर अपने अढाईसौ वाहण सेवकों के साथ रत्नद्वीप में भेजे, उन्होंने वहाँ पर विक्रय कर नवीन माल खरीदा, लौटते समय मध्य समुद्र में भयंकर तूफान लगने से सर्व जहाजें कालकूट द्वीप में चली गई,

इधर घर में इग्यारह क्रोड का निधान डाटा हुवा था, वह सर्प-विच्छु और अगारा रूप बन गया, तथैव माल के ५०० गाडे देशान्तर से आते थे, वे सब चौरधाड से लुँटा गये थे; एक ही साथ सर्वत्र द्रव्य का नाश होजाने से सेठ महादरिद्री बन गया, श्रेष्ठीपद और लोकमान्यता का सर्वथा लय हो गया. पैसे की महिमा अजब है; देखिये—

घनमर्जय काकुत्स्थ । धनमूलमिदं जगत् ॥ अन्तर नैव पश्यामि । निर्धनस्य शवस्य च ॥ १ ॥

भावार्थ—हे राजवंशी ! धन को उपार्जन करो, यह जगत् धन मूलक है, मैं तो धनहीन और मुर्दे में कुछ भी फर्क नहीं देखता—और भी सुनिये—

बाप कहे मेरे पूत सपूता । बहन कहे मेरा भैया ॥ घर जोरू भी लेत बलैयां । सोइ बडो जाकी गांठ रुपैया ॥ १ ॥

सेठ निर्धन होने से दुःखमय काल निर्गमन करने लगा—कितनेक दिन पीछे उस नगर के उद्यान में श्री देवेन्द्रसूरिजी महाराज पधारे हैं, वनपाल ने बधाई दी, राजा ने बहुत अच्छी बक्षीस की;

तदनन्तर नृपेन्द्र, श्रेष्ठीवर्ग, सुरेन्द्र सेठ और सर्व नाग्रिकजन गुरुदेवको वंदनार्थ गये, सादर अभिवंदनकर निज २ स्थानपर योग्यता पूर्वक बैठ गये. आचार्य महाराज ने धर्मदेशना आरंभ की—

धर्मतः सकलमङ्गलावलि-धर्मतः सकलसौख्यसंपदः॥ धर्मतः स्फुरति निर्मलं यशो। धर्म एव तदहो विधीयताम् ॥१॥
विवेकः परमो धर्मो । विवेकः परमं तपः विवेकः परमं ज्ञानं । विवेको मुक्तिसाधनम् ॥ २ ॥
भक्ष्याभक्ष्यविचारः स्याद् । गम्यागम्यविभेदकृत् ॥ मार्गामार्गपरिज्ञानं। गुणागुणविचारणा ॥ ३ ॥

भावार्थ—धर्मसे सकल मंगल श्रेणी होती है, धर्मसे सकल सुख-सम्पदा मिलती है, और धर्मसे निर्मल यश प्रकाशित होता है, इसलिये अहो मुमुक्षों ! इस धर्मकी अवश्य आचरणा करनी चाहिये. १. विवेक परम धर्म है, विवेक परम तप है; विवेक परम ज्ञान है और विवेक ही मोक्ष का परम साधन है. २. विवेक से भक्षाभक्ष का विचार होता है, ज्ञेयाज्ञेय का पृथक्करण होता है; मार्गा-मार्ग का परिज्ञान होता है और गुणागुण की चिन्तना होती है. ३. आगे चलकर पुनः महात्माश्री बोले—

निन्द्राऽऽहारो रत भीतिः । पशूनां च नृणां समम् ॥ विवेकान्तरमत्रास्ति । त विना पशवः स्मृताः ॥ ४ ॥
एक उत्पद्यते जन्तु-र्यात्येकश्च भवान्तरम् ॥ एको दुखी सुखी चैक-स्तथैकः सिद्धिसौख्यभाक् ॥ ५ ॥

भावार्थ—निद्रा, आहार, रतिक्रीड़ा और भय, ये समस्त पशु और मनुष्यों के समान होते हैं, इनमें मात्र एक विवेक का ही अन्तर है, इसके बगैर मनुष्य पशुओं के तुल्य कहे जाते हैं ४ एक प्राणी जन्मता है तो एक मरण शरण होता है, एक दुःखी, एक सुखी और एक मुक्ति सुख को सेवन करने वाला होता है ५

इत्यादि गुरुमहाराज की देशना सुनकर पर्षदाजन अपने २ स्थानपर चले गये; तदनन्तर श्रेष्ठीने सविनय पूछा—'हे भगवन् ! जीव का क्या लक्षण है ?' स्वामी ने फरमाया—"ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्योपयोगवान् जीवः" यानी ज्ञान–दर्शन–चारित्र–तप–वीर्य–उपयोग युक्त 'जीव' कहा जाता है देखिये—

नाण च दंसण चेव । चारितं च तवो तहा ॥ वीरिय उवयोगो य । एयं जीवस्स लक्खणं ॥ १ ॥

चेतनालक्षणश्चात्मा । सामान्येन बुधै स्मृतः ॥ संसारात्मा तथा जीवः । परमात्मा द्विधा मतः ॥ २ ॥

भावार्थ—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग; ये जीवके लक्षण जानना. १.—पंडित लोगों ने सामान्यतः चेतना लक्षणवाला 'आत्मा' माना है; जीवके दो भेद होते हैं—एक संसारी और दूसरा परमात्मा जानना. २.

आगे चलकर गुरुदेव जीव सम्बंधी विशेष हकीकत कहने लगे—

संसारात्मा सदा दुखी । जन्ममरणशोकभाक् ॥ चतुरशीतिलक्षासु । योनिषु भ्राम्यते सदा ॥ १ ॥
न सा जातिर्न सा योनि-र्न तत् क्षेत्रं न तत् कुलम् ॥ यत्र कर्मवशादात्मा-नोत्पन्नोऽयमनेकधा ॥ २ ॥
एगया देवलोएसु । नरएसु वि एगया ॥ एगया असुरं कायं । जहा कम्मेहिं गच्छइ ॥ ३ ॥
एगया खत्तिओ होई । तओ चण्डाल वुक्कसो ॥ तओ कीडपयंगो य । तओ कुन्थु पिपीलिया ॥ ४ ॥
सुभगो दुर्भगः श्रीमान् । रूपवान रूपवर्जितः ॥ स एव सेवकः स्वामी । नरो नारी नपुंसकः ॥ ५ ॥
संसारी कर्मसंबंधाद् । नटवत् परिभ्रामयाति ॥ अनन्तकालपर्यन्तं । जीवः संसारवर्त्मनि ॥ ६ ॥

भावार्थ—जन्म–मरण और शोकवाला संसारी जीव सदा दुखी रहता है और चौरासी लक्ष जीवायोनी में निरन्तर भ्रमण करता है १ –ऐसी कोइ जाति और योनि नहीं है; एवं क्षेत्र तथा कुल नहीं है कि जिसमें यह आत्मा कर्मवशात् अनेकशः उत्पन्न न हुवा हो २ हे महानुभाव ! कर्मके अनुसार एक जीव देवलोक में तो एक मनुष्य में और एक असुरकाय में जन्म लेता है. ३. एक जीव क्षत्री होकर तिरस्कृत चंडाल बनता है; पश्चात् वही जीव भवान्तर में कीडा, पतंगिया, कुंथुवा और कीड़ीपन में प्राप्त होता है. ४ सुभागी, दुर्भागी, श्रीमान्, दरिद्री, रूपवान्, रूपहीन, स्वामी, सेवक, नर, नारी और नपुंसक बन जाता है. ५ मतलब कि संसारी जीव कर्मबंध से अनन्तकाल पर्यन्त भवमार्ग में नटके समान परिभ्रमण करता है. ६.

गुरुमहाराज ने आगे बढकर धर्म के विषय में फरमाया किः—

भव्यजीवे दयादान । धर्म कल्पतरूपमम् ॥ दानशीलतपो भावं । शाखा मुक्तिसुखं फलम् ॥ १ ॥
धर्मादेव कुले जन्म । धर्मादेव विपुलं यशः ॥ धर्माद् धन सुखं रूप । धर्मः स्वर्गापवर्गदः ॥ २ ॥

भावार्थ—भव्यात्मा के अन्दर दया—दानमय धर्मरूप कल्पवृक्ष तथा दान—शील—तप—भावना रूपी शाखाएँ और मोक्षसुख रूप फल होता है. १. धर्मसे ही उत्तम कुलमें जन्म इसही से विस्तृत यशः और इसही के प्रताप से धन—सुख और दिव्य रूप प्राप्त होता है; एवं धर्म ही स्वर्ग—मोक्ष को देनेवाला है.

गुरुदेवने आखीर में फरमाया कि—

धर्म करत संसार सुख । धर्म करत निर्वाण ॥ धर्मपंथ साधन विना । नर तिर्यंच समान ॥ १॥

तीन पदार्थ साधत है सुज्ञ । विशेष धर्माराधत है विज्ञ ॥ धर्म प्रधान कहे सब कोई । अर्थ काम धर्महित होई ॥ २ ॥

इत्यादि धर्म देशना श्रवण कर श्रेष्ठीशिरोमणिने सम्यक्त्वरत्न प्राप्त किया और नम्र भाव से पृच्छा की—"हे भगवन्! कृपाकर ऐसी कोई तपस्या बताओ कि जिससे मेरा नष्ट निधान पुनः प्रकट हो" तब महापुरुषने इस प्रकार प्रकाशित किया—

व्रतकी संक्षेप विधि

पौष कृष्णा दशमी का व्रत तुम करो, उस दिन परमात्मा श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के जन्म कल्याणक का शुभ दिवस है, उस दिन एकासन करना चाहिये तथा नौम और इग्यारस को भी एकासन करने की विधि है, उस रोज भूमिशयन, एव शीलव्रत पालना चाहिये, दोनों समय प्रतिक्रमण और त्रिकाल देववदन करना परमावश्यक है, जिनालय में दस साथिये करके उन पर फल चढाना, धूप, दीप, नैवेद्य प्रभृति से स्नान महोत्सव करने का विधान है, इसही तरह काउसग्ग, प्रदक्षिणा, खमासमणे वगैरा की विधि करना चाहिये 'ॐ ह्रीँ श्रीपार्श्वनाथाय अर्हते नम' इस पद का दो हजार जाप करना और पारणे के दिन यथाशक्ति स्वामीवात्सल्य करना समुचित है, इस तरह प्रतिमास एकाशन करते हुए दस वर्ष मे यह व्रत सम्पूर्ण किया जाता है, इस कद्र आराधन करने से इस लोक में धन–धान्य–सौभाग्य मिलता है और परलोक में स्वर्गसुख प्राप्त होता है तथैव क्रमशः मोक्ष सुख तक उपलब्ध होता है–यह हकीकत श्रवणकर हर्ष से प्रफुल्लित लोचनवाले सेठ ने जैनधर्म अंगीकार किया; पश्चात् वन्दन कर श्रेष्ठी अपने घर

पर आया और मुनिवर अन्यत्र विहार कर गये.

सेठ ने दशमी का आराधन आरम्भ किया. दश महीने बीतने पर कालकूट द्वीप से गये हुवे माल-सहित जहाजें वापिस आगईं ऐसा सेवकों ने निवेदन किया; किन्तु सेठ को विश्वास नहीं आया तब शीलवती सेठानी बोली—"स्वामिन् यह सत्य ही समझियेगा, असत्य मानने का कोई हेतु नहीं; कारण कि धर्म का प्रभाव ही अलौकिक है, आज अपने घर पर निधान भी अवश्य प्रकट होगा" ऐसा कहकर भूशरण किये हुए निधान स्थान पर दोनों जन गये; वहाँ पूर्ववत् ज्यों का त्यों निधान देखा, "श्रीपार्श्वनाथ भगवन्त की अतुल कृपा से तथा गुरुदेव के पसाय से पुनः मैं श्रीमन्त हुवा;" ऐसा सेठ ने अपनी प्रियतमा को कहा; वे दोनों जैन धर्म का आराधन करते हुए सुखपूर्वक काल निर्गमन करने लगे; पुनः श्रेष्ठीपद प्राप्त हुवा, क्रमशः दश पुत्रों की प्राप्ति हुई और राजमान्य हुवा.

किसी एक समय ग्रामानुग्राम विहरते हुए श्रीदेवेन्द्रसूरि महाराज पुनः उद्यान में पधारे; यह समाचार सुनकर श्रेष्ठीवर वन्दनार्थ गया, व्याख्यान श्रवण करने के पीछे सादर विनम्र भाव द्वारा पूछा—

हे प्रभो ! दशमी का उद्यापन किस तरह करना चाहिये, वह सानुग्रह प्रदर्शित कीजियेगा" गुरु महाराज ने फरमाया सावधानतः सुनो—

❀ व्रत का उद्यापन ❀

भव्यजनो ! उजमने में–१० ग्रन्थ, १० पुट्ठे, १० लेखन, १० कागज, १० बधन, १० ठवणी, १० माला, १० चन्द्रवे, १० जिनमन्दिर, १० जिनप्रतिमाएँ, १० दीपक, १० आरती इत्यादि तमाम ज्ञान–दर्शन और चारित्र के दस २ उपगरण रखना विधिमार्ग है, सघ सेवा–स्वामीवात्सल्य प्रभृति धर्म-कार्य शासनोन्नति के लिये करना समुचित है–गुरुमहाराज के मुखसे ऐसा श्रवणकर सेठने सम्रृद्धि पूर्वक उजमना करके दस मणिमय जिनबिंब भराये—

कितनेक दिन बीतनेपर सेठ वैराग्य रंगरगित होकर जेष्ठपुत्र सुन्दर को अपने स्थान पर स्थापित कर सर्व तनुजों को बुलाये और कहने लगा—" अहो पुत्रों ! तुम कृष्ण दशमी के दिन पार्श्वनाथ प्रभु की

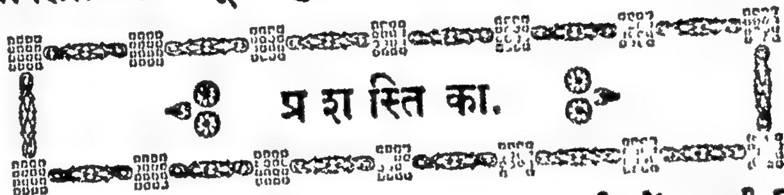
सतरह प्रकार की पूजन कर व्याख्यान सुनना और महात्माओं को पड़िलाभना तथा एकासन करके चतुर्विध आहार का नियम करना और पारणे के दिन स्वामीवात्सल्य करना; इस प्रकार धर्मकृत्य करने से हम सुखी हुवे हैं, तथैव तुम लोग भी सुखी बनना; इस मुजब पुत्रोंको शिक्षा देकर गुरुमहाराज के पास गया वंदन करके नम्र प्रार्थना की–" हे स्वामिन् ! कृपा कर मेरेको भवतारणी दिक्षा प्रदान करो; जिससे स्वर्ग और अपवर्ग सुख की मुझे आप्ति हो " तब गुरुराजने फरमाया 'यथा सुखं तथा कुरु' बस शीघ्र ही प्रव्रज्या अंगीकार की–विधिपुरस्सर छट–अठम आदि तपस्या करने लगा, इस तरह बारह वर्ष पूर्ण होने के पश्चात् पन्द्रह दिन का अनशन कर अढारह दोष रहित समाधि सहित कालकर दसवें देवलोक में बीस सागरोपम की आयुष्यपने उत्पन्न हुवा.

अनुक्रम से देवसुख भोग कर दसवें देवलोक से च्यवकर इसही जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय के अन्दर मंगलावती नगरी में सिंहसेन राजा की गुणसुन्दरी महाराणी की कूक्षि

सरोवर में हंस समान जयसेन नाम का पुत्र होगा, वहां पर ससार सुख भोगकर चारित्र अंगीकार करेगा और ग्यारह अग, बारह उपांग पढेगा, एकाकी विहार कर एक समय उपवन के अन्दर काउसग्ग ध्यान में खडा रहेगा, वहां का मिथ्यात्वी अधिष्ठायक देव अनेक प्रकार से उपसर्ग करेगा तद्यथा—१ नोलिया (२) विच्छु (३) सर्प (४) हाथी (५) सिंह (६) नाहर (७) पिशाच (८) राक्षस (९) खेचर (१०) जिन्द, इत्यादि (२१) उपसर्ग करेगा उस समय शम—दम गुणसे शुभध्यान द्वारा वह मुनि घनघाती चार कर्मोंका क्षय करके केवलज्ञान उपार्जन करेगा, और पश्चात् शिवसदन में पहुँचेगा शीलवतीने भी चारित्र अंगीकार किया और सम्यग् पालन कर देवलोक में गमन किया, क्रमशः वह भी महाविदेह क्षेत्र में सिद्धिपद को प्राप्त करेगी

इस मुजब पोष दशमीका महात्म्य परमात्मा श्रीमहावीरदेवने गौतम गणधर के समक्ष निरूपण किया—इस परम पुनित चरित्र के श्रवण करने से इस भव में धन—धान्यादि सुख और पर भव में स्वर्ग—अपवर्ग सुख प्राप्त होता है.

उपसंहार—इस पौषदशमी के व्याख्यान में जन्म कल्याणक का महात्म्य, व्रतकी संक्षेप विधि और उजमने का विधान वगैरः उल्लेख किया गया है; इस पर पूर्ण मननकर इस पवित्र व्रतका समाराधन करना; जिससे ऐहिक और पारलौकिक अपूर्व सुखकी प्राप्ति हो—हितं भवतु भव्यानाम्.



प्र श स्ति का.

गुण दन्ति ग्रह मेदिनी (१९८३) रक्षाबंधन जान ॥ मंजल चातुर्मास में। पूर्ण किया आख्यान ॥ १ ॥
सुख भगवान सुपूज्य गुरु। त्रैलोक्य गुरु गणधार ॥ आनन्द रत्नाकर कहे। रचना जग सुखकार ॥ २ ॥



सातवाँ श्रीपौषदशमी व्याख्यान सम्पूर्ण

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



* आठवाँ-श्रीमेरुत्रयोदशी व्याख्यान. *

आदिनाथ वन्दन करूँ । गुरुवर कृतउपकार ॥ रचना मेरुत्रयोदशी । भव्यजीव सुखकार ॥ १ ॥

सकलकर्मवारी, विश्वपूज्य, विश्वेश्वर, अरिहन्त–भगवन्त को प्रणमनकर तथा व्यामोहग्रस्तोद्धारक, आत्मानन्दी गुरुपुङ्गव को नमन करके यह धर्मप्रदर्शक 'श्रीमेरुत्रयोदशी व्याख्यान' संस्कृत परसे आत्मीय भाषामें (हिन्दुस्थानी भाषामें) योजित करता हूँ; भव्य पुण्यशालियो ! इस पुनीत व्याख्यान को श्रवणकर अपना जीवन सफल करना.

मूल—प्रबंध.

अष्ट महाप्रातिहार्य * विराजित, जगद्गुरु श्रीवर्धमान स्वामी ने श्रीगौतमगणधरादि के समक्ष मेरुत्रयोदशी का महात्म्य फरमाया है; उसही प्रकार गुरुपरंपरानुसार हम भी यहां प्रकाशित करते हैं—

पिंगल रायका दृष्टान्त.

श्री ऋषभदेव स्वामी और अजितनाथ प्रभुके अन्तरकाल में यानी पचास लाख क्रोड़ सागरोपम के मध्यकाल में पूर्वदेशान्तरगत अयोध्या नाम की नगरी में काश्यप गोत्रावतंस, इक्ष्वाकु वंशीय 'अनंतवीर्य' नाम का राजा राज्य करता था, उसके पांच सौ रानियाँ थीं; उनमें प्रियमती नाम की एक पट्टरानी थी,

* (१) अशोकवृक्ष (२) पुष्पवृष्टि (३) दिव्यध्वनि (४) चामरयुगल (५) सिंहासन (६) भामंडल (७) दुंदुभी (८) छत्रत्रय. ये अष्ट 'महाप्रातिहार्य' कहे जाते हैं.

धनजय सदृक चतुर्बुद्धिनिधान महाअमात्य था और बहुल प्रमाण में चतुरंगी सेना × थी; इस कदर नृपेन्द्र सुखपूर्वक राज्य पालता था

किसी एक समय राजा के दिलमें चिन्ता उत्पन्न हुई कि—" प्रभु कृपासे मुझे सब तरहके सुख हैं, लेकिन एक पुत्रकी प्राप्ति नहीं है तो यह मेरा समग्र राज्य कौन भोगवेगा ? सचमुच ही पुत्रके विना गृह श्मशान वत् शून्य है " राजेन्द्र ने अनेकानेक उपाय किये, किन्तु पुत्रोत्पत्ति नहीं हुई; इस समय ' कौंकण ' नामके एक मुनीश्वर आहार के लिये राजा के घरपर पधारे, राजा–रानीने उठकर सविनय वदन किये और सादर आहार वहेराकर प्रार्थना की " हे स्वामिन् ! हमारे पुत्रकी प्राप्ति कब होगी ? अनुग्रह कर फरमाईश करो ! " मुनिराज बोले—" ज्योतिप–निमित्तादि मुनिजन कथन नहीं करते " तव राजा–रानीने पुनः २ करुणाजनक निवेदन किया इस पर स्याद्वादानुभवी मुनिउत्तमने दयाकर फरमाया—" हे राजन् ! तेरे पुत्रतो होगा; किन्तु पांगला होगा " अन्तमें इतना कहकर मुनिश्री वहाँ से चल दिये.

× १ हाथी २ घोड़े ३ रथ ४ पेदल, ये चार ' चतुरंगी सेना ' कही जाती है

पश्चात् राजा–रानीने विचारा कि–" नहीं मामासे कहेणा मामा अच्छा " भले पङ्गु पुत्र हो! क्रमशः महारानीजी सगर्भा हुई, पूर्ण कालमें पांगला पुत्र अवतारित हुवा, महिपतिने पुत्र जन्म सुनकर सहर्ष जन्म महोत्सव किया, बारवें दिन सर्व कुटुम्ब को भोजन कराकर कुमार का नाम 'पिंगलराय' रख्वा, अन्तः वेदना के हेतु उसे अन्तःपुरमें ही सुरक्षित रख्वा और लोगों के पूछने पर इस तरह प्रत्युत्तर दिया जाता कि–" राज–तनय का अतिशय अद्भुत रूप होने से बाहर निकालने में नज़र लगजाने की देहशत हैं; अतएव अन्दर हीं रख्वे जाते हैं " इस परसे सारे नगरमें यह चर्चा चलने लगी कि 'पिंगलकुमार के तुल्य इस अवनितलपर कोइ रूप–सौंदर्यवान् नहीं है;' इस प्रकार द्वितिया के चन्द्र सदृश राजतनय अभिवृद्धि को प्राप्त होने लगा.

इधर अयोध्यानगरी से सवासौ योजन के फासले पर मलय देशान्तर गत ब्रह्मपुर नामका एक नगर था, वहाँ इक्ष्वाकुवंशावतंसक काश्यप गौत्रीय 'शतरथ' संज्ञक नृपति राज्य करता था, उसके इन्दुमती नामकी पट्टरानी थी और गुणसुंदरी नामकी रूप–लावण्य–सौभाग्यादि गुणयुक्ता एकाकी पुत्री

थी, पृथ्वीपति के कोइ पुत्र नहीं होने से वह पुत्री माता–पिताको अतिवल्लभा थी; कन्या ने तारुण्यावस्था में प्रवेश किया, नरनाथ योग्यवर की अप्राप्ति से चिन्ताग्रस्त बना–इस समय में नगर के कितनेक वेपारी क्रयाणा लेकर देशान्तर वेपार के लिये जाने लगे, उस समय नृपेन्द्रने उनको कहा–" विदेश में भ्रमण करते हुवे तुमको यदि गुणसुन्दरी के लायक कोइ वर मिलजाय तो सगाइ–सम्बंध करदेना, " राजेन्द्र का वचन शिरसावद्य करके वेपारीलोग रवाना हुवे; अनेकानेक नवीन नगरियों का अवलोकन करते हुवे क्रमशः अयोध्यानगरी में आये. वहाँ समस्त माल वेंचकर अच्छा मुनाफा उठाया और नूतन क्रयाणा खरीदा. वापिस चलते वख्त अपने राजेश्वर की बात याद आने से अद्भुतरूपयुक्त राजसूनु पिंगलराय के साथ अपनी राजकन्या गुणसुन्दरी का अर्धविवाह सम्बंध कर दिया, अनन्तवीर्य राजेन्द्रने भी महेसुल वगेरः माफकर उनका सत्कार किया, तमाम व्यापारी आमोद–प्रमोद को हृदय में धारण करके अपने देशके प्रति प्रस्थान कर गये अपने नगर में आकर धरणीधर को सकल वृत्तान्त विदित किया, महाराजा शतरथ कुमार की हकीकत सुनकर आनन्दित हुवे.

जब कि कन्या विवाह योग्य हुई तव नरनाथ ने कुमार को बुलाने के लिये अपने सेवकों को भेजे, उनने अयोध्यामें जाकर अनन्तवीर्य भूपेन्द्र को सविनय निवेदन किया कि—" विवाह के वास्ते कुमार को शीघ्र भेजो ! " राजेन्द्र शोकसमुद्र में डूबने लगा; रानी और मन्त्री को एकान्त में बुलाकर कहा—" कुमार पांगला है, इसको कन्या कौन देगा ! अपने को क्या करना चाहिये ? " महामन्त्रीश्वरने अल्पकालमें ही कुच्छ निश्चयकर आगंतुक सेवकों को बुलाकर कहा—" इस समय कुमार यहाँ नहीं है, यहाँ से दोसो योजन पर मोहनीपत्तन नामक शहर में उनका मोसाल (नानेरा) है, वहाँ वे गये हुवे हैं; अतः अभी लग्न नहीं हो सकेंगे ! आगे देखा जायगा, " तव सेवकलोग कहने लगे—" हे स्वामिन् ! हमारा नगर दूर है, वार २ आना अशक्य है, इसलिये हमें पूर्ण निश्चयकर लग्न दीजिये और समय पर आप सर्वलोग पधारजाना; ऐसी हमारी नम्र विनन्ती है " नृपेन्द्रने सोलह मास अनन्तर लग्नका निर्णय किया, तव लग्न लेकर राजअनुचर मलयदेश प्रति प्रयाण कर गये.

महाराजा अनन्तवीर्य, महाराणी और अमात्य चिन्तासिंधु में गोते खाने लगे, समस्त के सुकोमल वदन के नूर उतर गये, अनेकानेक विचार किये, परन्तु कोइ उपाय लब्ध नहीं हुवा, इसही अवसर में चारज्ञान के धारक 'गाङ्गिल' नाम के महामुनीश्वर अपने पांचसो शिष्य परिवार से परिवृत नगर के उद्यान में पधारे, वनपालक ने प्रभु की पापप्रणाशिका भक्तिकर नरनाथ को वधाई दी, राजा नें योग्य इनाम बक्षीस किया, तत्पश्चात् राजेन्द्र राजऋद्धि पुरस्सर मुनिपुङ्गव को वंदन करने गया, विधिपूर्वक प्रणमन करके योग्य स्थानपर बैठ गया, पर्षदा सम्मिलित हुई इस समय गुरुवरने धर्मदेशना प्रारंभ की—

❀ गुरुदेव की धर्मदेशना ❀

जीवदया रमिज्जइ। इन्दियवग्गो दमिज्जइ सयावि ॥ सच्च चेव वदिज्जइ। धम्मस्स रहस्स इणं चेव ॥ १ ॥
जयणाउ धम्मजणणी। जयणा धम्मस्स पालणी चेव ॥ तह वुड्ढिकरी जयणा। एगंत सुहावहा जयणा ॥ १ ॥
आरंभे नत्थि दया। महिलासगेण नासए धमं ॥ सकाए सम्मत्तं। पवज्जा अत्थगहणेण ॥ ३ ॥
जे धंभचेरं भट्ठा। पाए पाडंति बंभयारीणं ॥ ते हुंति टुंट मुंटा। बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जीवदया में निरन्तर रमण करे, इन्द्रियवर्ग को दमन करे और सत्य संलाप करे; यह धर्म का रहस्य जानना. १ यत्ना (जीवदया) धर्मकी जननी है, धर्मकी प्रतिपालिका है और धर्मकी वृद्धि करनेवाली भी यत्ना ही है; विशेष क्या कहें? यत्ना ही एकान्त सुख को देने वाली है. २ आरंभ में दया नहीं है, कामिनी के संगसे ब्रह्मचर्य नष्ट होता है, शंका से सम्यक्त्व और द्रव्यग्रहण से चारित्र विनाश होता है. ३ जो ब्रह्मचर्य से पतित हुवे हैं और ब्रह्मचारी को अपने चरण में नमन कराते हैं; वे छिन्नहस्त और हीनशरीरी होते हैं तथैव उनको बोधि (सत्यधर्म—जैन धर्म की प्राप्ति) भी दुर्लभ है. ४.

अहो भव्यात्मओं! धर्म का मूल दया और पापका मूल हिंसा है; एक जीव हिंसा करता है, दूसरा कराता है, तीसरा प्रशंसा करता है; ये सर्व समान पापी है * जो प्राणी निर्दयता पूर्वक बहुत से एकेन्द्रिय जीवों का नाश करता है, वह पर भवमें पित्त—वायु प्रभृति रोगवाला होता है; इसही प्रकार अनुक्रम से वे इन्द्रियों का विनाशक गूंगा—मुखरोगी और दुर्गंध श्वासवाला होता है. ते इन्द्रियों के घातक को नासिका

* इस विषय में कितनाक खास समझने लायक है; मगर ग्रन्थगौरव के कारण यहाँ पर उल्लेख नहीं किया गया.

का रोग होता है; चौरिन्द्रियों का प्रणाशक नेत्ररोगी–काणा और अंधा होता है, तथैव पंचेन्द्रियों का विध्वसक भवान्तर में बहेरा होता है; एव पांचों प्रकार के जीवों की हिंसा करने से समस्त इन्द्रियों से हीन होता है; अतएव मुमुक्षो! हिंसा–मृषादि महत्पापों को सर्वतः परित्याग करो–गुरुराज की देशना श्रवणकर राजा ने नम्रता से पूछा—" हे भगवन्! मेरा अगज किस कर्म के कारण पांगुला हुवा? " गांगिल मुनिश्वरने फरमाया–" पूर्वकृत पाप के प्रवल प्रताप से सब कुछ होता है, तुम सब सावधान होकर इसका पूर्वभव सुनो—

(पिंगलराय का पूर्वभव)

इस जम्बूद्वीपान्तरगत ऐरवत क्षेत्र के अन्दर अचलपुर नगर में ' महेन्द्रध्वज ' नामका राजा राज्य करता था, उसके उमया नामकी स्वरूपवती पट्टरानी और सामन्तसिह नामका पुत्ररत्न था, वह पाठशाला में पढने के लिये प्रतिदिन जाया करता था, वहॉ पर जुगारियों की सगत से स्वय जुगारी बना और शनैः २

सातों दुर्व्यसनों में तत्पर हुवा + राजेन्द्रने व्यसन त्याग के लिये बहुतेरा कहा–सुना किन्तु वह एक का दो नहीं हुवा; अन्त में माहिपति ने कंटाला खाकर उसे देशपार कर दिया, तदपि व्यसनमुक्त न हुवा, भटकता २ सुरपुर संज्ञक शहर में आपहुँचा, तत्र निवासी चम्पक सेठ को सुन्दराकार से उत्तम पुरुष विज्ञात हुवा; 'इससे अन्य कठिन कार्य नहीं हो सकेगा' ऐसा विचारकर अपने घर के निकटवर्ती जिनमंदिर की रक्षा के वास्ते अपने पास रक्खा; मगर 'स्वभावो दुस्त्यजो नाथ' इस नियम के अनुसार प्रभु के आगे चढाये हुवे चावल–सुपारी वगैरः चुराकर जूआ खेलने को जाता. सेठ को यह बात मालुम हुई तब उसको कहा– "हे भद्र ! देव द्रव्यके भक्षण करने से जीव अनन्तसंसार परिभ्रमण करता है, वास्ते आइन्दा ऐसा मत करना; इत्यादि उपदेश दिया; मगर मिथ्यात्व–अज्ञान के तीव्रोदय से 'घृतरक्षावत्' निष्फल गया; एक वख्त प्रभु के छत्रादि आभूषण हरणकर कहीं पर अनाचार सेवन करने गया, ज्ञात होने से सेठने अपने घरसे उसको निकाल दिया.

+ सप्तव्यसन का पूर्णतः खुलाशा संपादन करना हो तो हमारा रचित 'सप्तव्यसन निषेध' नामक ग्रन्थका अवलोकन करो.

वहाँ से रवाना होकर अरण्य में अटन करता हुवा किसी एक शिकारी के साथ मिलगया, वहाँ बहुत से मृग—शशले वगैरः जानवरों को मार २ कर अपना उदरपोषण करने लगा, उसही वनमें एक तापसाश्रम था, उसमें बहुतेरे तापसजन तपस्या करते थे, उस शान्तिसदन में हिरणादि भी विश्रान्ति लेने को आ बैठते थे, एक समय सगर्भा हिरणी आश्रमकी तर्फ जा रही थी, बीचमें ही सामन्तसिंहने अपने तीक्ष्ण शस्त्रसे उसके चारों पैर छेदन किये, जिससे वह शीघ्रही पृथ्वीपटपर गिरपड़ी, तापसों को मालुम होने से उसे धर्मश्रवण कराया जिससे उसकी सद्गति हुई, तापसों ने रखड़ते हुवे राजपुत्र को कहा—" रे दुष्ट ! तूने हमारी मृगली के पादछेदन किये हैं इसलिये जा भवान्तर में तू पांगलेपन उत्पन्न होना " ऐसा शाप देकर तापस अपने स्थानपर चले गये, सामन्तसिंह तापस के उग्र क्रोधसे भयभीत होकर वनमें पलायन कर गया, सामने वनराज मिला वहीं पर कुमार के राम रम गये, मरकर नरक में पहुँचा, सत्य है ! पापका भांडा अख़ीर फूटे विना नहीं रहता.

वहां से च्यवकर असंख्य तिर्यंच और नरक के भव करके अकामनिर्जरासे बहुत से कर्मों का क्षयकर महाविदेह क्षेत्रमें कुसुमपुर नगर के अन्दर विशालकीर्ति राजा के घरपर शिवा दासी के उदर से पुत्रपने पैदा हुवा, नाम 'वज्र' रखा गया, क्रमसे यौवनास्था में प्राप्त हुवा, नृपेन्द्र की सेवा करने लगा, पर पूर्वकर्म के उदय से शरीर में गलत्कुष्ट (जिससे शरीर गलता जाय) रोग उत्पन्न हुवा, हाथ, पेर गल २ कर गिरपड़े, दासीपुत्र पड्गु होगया, मरण समय माताने नवकार मंत्र सुनाया, समाधि से मरकर व्यंतर हुवा.

वहा से च्यवकर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्रमें सौहार्दपुर नगर के अन्दर सूरदास सेठ की प्रेमदा वसन्ततिलका के गर्भसे गुणवान्—विवेकवान् 'स्वयंप्रभ' नामक पुत्रपने अवतरित हुवा, कर्मवशात् पेरों पर फोड़ों की बीमारी होने से चलने के लिये सशक्त नहीं था, लड़के की उम्र आठ वर्ष की हुई, एकाकी पुत्र व्याधिग्रस्त होने से मात—पिता दुखी हुवे, इस समय तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय की यात्रा के लिये एक संघ निकला, तब सेठ भी अपने पुत्रको साथ लेकर संघ के साथ यात्रार्थ गया, क्रमशः संघ सिद्धाचलजी

पहुँचा, गिरीराज पर आरोहण करके देवाधिदेव श्रीऋषभदेव स्वामीकी भक्ति की; सूरदास सेठ भी पुत्र और भार्या सह ऊपर चढा वहाँ पर सूर्यकुंड के जल से लड़के को स्नान कराया, कुंड देवअधिष्टित होने से स्वयंप्रभ के पेरों को जलने स्पर्श नहीं किया, यह देख सकल संघ को आश्चर्य हुवा, संघने मुनीश्वर को विवेक सह पूछा–' स्वामिन्! इसका कारण क्या ?' गुरुदेव ने कहा–" इस लड़के ने बहुत भव पहिले देवद्रव्य भक्षण किया था तथा एक गर्भवती हिरणी के चारों पेर छेदन किये थे, वे कर्म अधिक प्रमाण में क्षय होगये हैं और अल्पांश अब अविशिष्ट है, इस कारण तीर्थजल स्पर्श नहीं करता" यह वृतान्त मुनिश्री के मुखसे श्रवणकर मात–पिता और पुत्र तीनों को वैराग्य दशा जागी, तब श्रीआदिनाथ को नमन कर अपने घरपर आये और सदैव धर्मकरणी मे उद्यत हुवे; इस मुजब सोलह हज़ार वर्ष पर्यन्त कुष्ट–व्रणपीड़ा को भोगकर अन्त में कर्म की आलोचनाकर प्रथम देवलोक में अवतरित हुवा, वहाँ से च्यवकर हे अनन्तवीर्य राजन्! तेरे पुत्रपने यह 'पिंगलराय' उत्पन्न हुवा, है इस तरह गांगिल मुनिने कुमार का पूर्वभव कहा और फिर आगे प्रवचन चलाया—

मद्यपानाद् यथा जीवो । न जानाति हिताऽहिते ॥ धर्माऽधर्मौ न जानाति । तथा मिथ्यात्वमोहितः ॥ १ ॥
मिथ्यात्वेनालीढचित्ता नितान्तं । तत्वातत्वं जानन्ते नैव जीवाः ॥ किं जात्यन्धाः कुत्रचिद्वस्तुजाते । रम्यारम्यव्यक्तिमासादयेयुः ॥२॥
अभव्याश्रितमिथ्यात्वे-ऽनाद्यनन्ता स्थितिर्भवेत् ।' सा भव्याश्रितमिथ्यात्वे-ऽनादिसान्ता पुनर्मता ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस तरह मदिरापान से जीव हिताहित नहीं जानता, ठीक उसही तरह मिथ्यात्व में मोहित जीव धर्माधर्म को नहीं पहिचानता. १—मिथ्यात्व से व्याप्त चित्तवाले जीव तत्वातत्व को नहीं जानते; दृष्टान्त तरीके जन्मान्ध व्यक्ति कहीं पर रही हुई वस्तुको सुन्दर—असुन्दर रूप व्यक्त कर सकता है क्या ? अपितु न. २—अभव्य आश्रित मिथ्यात्व की ' अनादिअनन्त ' स्थिति होती है और भव्याश्रित मिथ्यात्व की ' अनादिसान्त ' स्थिति मानी जाती है. ३.

हे राजेन्द्र ! इस मुज़ब जीव मिथ्यात्व के उदय से कर्म बंधन करता है; तेरा पुत्र भी इस कदर कर्म बंधनकर पांगला हुवा है; मुनीशकी वाणी श्रवणकर भूपति बोला—" हे प्रभो ! इसका कर्म किस करणी से नष्ट होसकता है ? " मुनिवर ने फरमाया— अढारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम यानी ३२ पद्म ४० नील

सागरोपम पर्यन्त नष्ट हुवे धर्म के उद्धारक श्रीऋषभदेवस्वामी का तीसरे आरेके ३ वर्ष और ८॥ मास शेष रहने पर माघ विदि तेरस को निर्वाण कल्याणक हुवा है, वह दिन उत्तम है, उस पर्व दिनका आराधन करो; उसकी विधि इस प्रकार है—

❀ पर्व आराधन विधि ❀

माघकृष्णा त्रयोदशी के दिन चौविहार उपवास करना चाहिये, परमात्मा के सन्मुख पांच रत्नमय मेरु चढाना, जिसमें चारों दिशाओं में चार छोटे और मध्य में एक बडा मेरु रखना, प्रत्येक छोटे मेरु के समक्ष एक २ नन्दावर्त्त साथिया करना, दीप–धूपादि नाना विधि द्रव्यपूजा करने की विधि समझना. 'ॐ ह्रीं श्रीऋषभदेवपारगताय नमः' इस पदका दो हज़ार गुणना गिनना, जो पोषध किया हो तो सर्व द्रव्यविधान पारणे के दिन करना चाहिये, बाद सुपात्रका अतिथी संविभाग करके पारणा करना. × इस

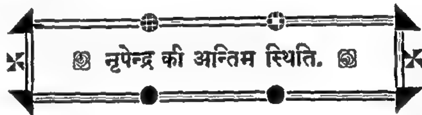
× प्रतिमास की कृष्ण त्रयोदशी के दिन यह व्रत किया जाता है

तरह जघन्यतः तेरह महिने और उत्कृष्टतः तेरह वर्ष में यह व्रत सम्पूर्ण होता है; पश्चात् यथाशक्ति उद्यापन करना आवश्यक है. हे नरेन्द्र ! इस विधि से तेरे पुत्रको पर्वाराधन करना चाहिये.

इस प्रकार गुरु महाराज का वचन सुनकर अनन्तवीर्य नृपेन्द्र अपने पुत्र पिंगलराय सहित व्रत अंगीकार कर अपने स्थानपर वापिस चल गया–राजकुमारने उपरोक्त पावन तिथी के दिन भावपूर्वक व्रत आरंभ किया, प्रथम व्रत से ही पेरों में अङ्कुरे प्रकट हुवे, तेरह महिने में तो सुन्दर हाथ–पग उत्पन्न होगये, महिपाति अतीव हर्षित हुवा, धर्म का महात्म्य अवलोकनकर अधिकतर कटिबद्ध हुवा सोलह मास पीछे पिंगलराय का गुणसुन्दरी के साथ विवाह हुवा, अन्य भी अनेक राजतनयाओं के साथ पाणिग्रहण किया; तदनन्तर भूपेन्द्रने अपने पुत्र को राज्यतंत्र देकर गांगिल मुनि के समीप दीक्षा अंगीकार करली, चारित्र को निर्दोषता से पालन करते हुवे शत्रुंजय गिरिराज पर अनशन कर शिववधु के साथ स्नेह सम्बंध बांधा याने शिवपद को प्राप्त हुवे–पिंगलराय राजेन्द्र नीतिपुरस्सर प्रजाका पालन करते हुवे तेरह वर्ष तक मेरुत्रयोदशी का आराधन किया; प्रान्ते महोत्सव पूर्वक इस प्रकार उद्यापन किया—

ॐ व्रतका उद्यापन ॐ

पृथ्वीपति पिंगलरायने १३ जिनमन्दिर वनाये १३ स्वर्णमय–रत्नमय–रजतमय जिनबिंब क्रमशः भराये, १३ प्रकार रत्नोंके पांच मेरु वनाकर चढाये, १३ वक्त संघ निकालकर तीर्थयात्रा की, १३ वार स्वामिवात्सल्य किये, वहुविधि ज्ञानभक्ति और चारित्रभक्ति भी की



नृपेन्द्र की अन्तिम स्थिति.

नृपेन्द्र पिंगलरायने कितनेक पूर्व पर्यन्त व्रत सहित राज्य पालन किया; पश्चात् अपने पुत्र महसेन कुमार को राज्य देकर श्री सुव्रताचार्य महाराज के समीप वहुत पुरुषों के साथ प्रव्रज्या अंगीकार करली, द्वादशंगी पढकर चौदह पूर्वधारी हुवे, एक गीतार्थ मुनि की हैसियत से आचार्य पदालङ्कृत हुवे, छठे से

सातवें में होकर आठवें गुणस्थान पर आरोहण किया, यहाँ शुक्लध्यान में लीन हुवे. अनुक्रम से कर्म क्षपाते हुवे बारवें गुणस्थान के अन्त में चार घनघाती कर्मों का नाशकर तेरवें गुणस्थान के प्रथम समय में 'केवलज्ञान' उपार्जन किया, अनेक भव्यात्माओं को प्रतिबोध देते हुवे पृथ्वीपर विचरे, इस तरह बहत्तर पूर्वलक्ष सर्व आयुष्य को भोगकर अन्तिम गुणस्थान पर पंच लघु अक्षरोच्चारकाल तक स्थिर रहकर योगत्रय का पूर्ण निरोध किया, वहाँ सर्व कर्मों को निर्मूलकर एक समय मात्रमें मोक्ष पधारे; यहाँ शरीर का त्यागकर पूर्वप्रयोगित बंधनादि छेदन करके सिद्ध शिलाके ऊपर योजनान्ते साद्यनन्त स्थिति में विराजित हुवे; तात्पर्य कि अक्षय सुख में तलालीन होगये.

इस मुज़ब मेरुत्रयोदशी पर्व की महिमा पिंगलराय से प्रसिद्ध हुई—पहिले रत्नों के मेरु चढाते थे, फिर क्रमशः कालके प्रभाव से सोने तथा चान्दी के चढाने लगे और वर्तमान में घृत के मेरु चढाने की प्रवृत्ति है—इस पर्व के आराधन से इस भव और भवान्तर में सुख—सम्पत्ति की उपलब्धि होती है.



उपसंहार—इस मेरुत्रयोदशी के व्याख्यान मे आदीश्वर भगवान् का निर्वाणकल्याणक, व्रतका और उद्यापन का संक्षेप विधान बयान किया गया है, व्रत के महात्म्य की सिद्धि में 'पिंगलराय का दृष्टान्त' प्रदर्शित किया गया है, इस पर पूर्ण आलोचना कर अहो आत्मार्थियो ! अपना जीवन सफल करना—शान्तिर्भवतु सर्वेषाम्

प्र श स्ति का

पावक करि गो चन्द्रमा (१९८३) दुवली आठम जान ॥ मंजल वर्षाकाल में । पूर्ण किया व्याख्यान ॥ १ ॥
सुखदाता भगवान गुरु । त्रैलोक्य गुरु विश्राम ॥ आनन्द रत्नाकर वदे । उपाख्यान गुणधाम ॥ २ ॥

⊛ आठवां श्रीमेरुत्रयोदशी व्याख्यान सम्पूर्ण हुवा. ⊛

ॐ शान्ति. शान्तिः शान्तिः



* नौवाँ श्रीहोलिका व्याख्यान. *



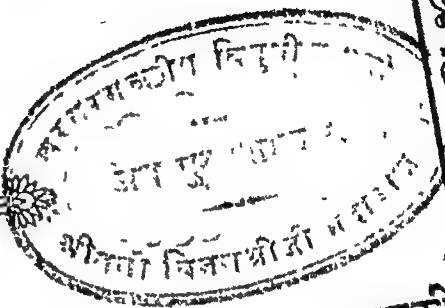
शीतल जिन वन्दन करी । गुरुवर सन्त महन्त ।' उपाख्यान गुम्फित करूँ । हुताशनी रसवन्त ॥ १ ॥

अखण्डत्रिखण्डस्वामी. विश्वपूज्य, जगदाधार, जिनेश्वर—परमेश्वर को सादर वंदनकर तथा परमसंयमी, परमार्थजीवी पूज्यपाद गुरुदेवको नमन करके यह वैराग्योत्पादक ‘श्रीहोलिका व्याख्यान’ संस्कृतपरसे राष्ट्रीय भाषा में निर्माण करता हूँ; अनुभवाभिलाषियो ! इस अजब व्याख्यान को श्रवणकर निष्कर्ष आकर्षकर अपना जीवन कृतार्थ करना.

मूल—वृतान्त.

फाल्गुन मासका पर्व ससार मे 'होलिका—होली' नामसे प्रसिद्ध है, द्रव्य होली और भाव होली, इस तरह यह पर्व दो विभागों में विभक्त होता है—द्रव्यहोली के अज्ञानी भक्तजन शुभाशुभ विवेक से रहित होकर हलके लोगोंके प्रवाह में आसक्त होजाते हैं, धर्म विमुख गडरियाप्रवाहिक लोग काष्ट—कडे वगैर. का जत्था जला कर द्रव्यहोली करते हैं, मानो धर्म—पर्व विराधते हैं, दूसरे दिन धूल उड़ाना, नग्न शब्दों का प्रलाप करना, मूत्र और जलादि छाटना, स्त्रियोंके वस्त्र खींचना, गर्दभ पर बैठा कर पुरुष की कदर्थना करना, इत्यादि अनेक अनर्थक व्यवहार करते हुवे 'धुलेटी' पर्वका आराधन करते हैं, धर्मीजनों को यह कुत्सित व्यवहार परिहार करना चाहिये— भावहोली के उपासक आत्मार्थीलोग तपस्यारूप देदिप्यमान्

अग्नि से आत्मीय कर्मरूप काष्ठादि को भस्मीभूत करते हैं और सम्यग् ध्यान रूपी जल से फाग की धूम मचाते हैं, ज्ञान रूपी गुलाल उड़ाते हैं और स्वाध्याय स्वरूप गीत–गान करते हैं– होली पर्व तथा रजःपर्व कहाँ से और किस तरह प्रारम्भ हुवे, इसका अब सिंहालोकन करते हैं—



पर्वकी उत्पत्ति.
होलिका और ढुंढा का आख्यान

पूर्वदेशान्तरगत जयपुर नामक नगर में जयवर्मा राजा राज्य करता था, उसके मदनसेना नामकी पट्टरानी और मतिचन्द्र संज्ञक एक प्रधान था, उसही नगर में मनोरथ नामका एक श्रीमंत सेठ निवास करता था उसके चार पुत्र और एक अतिशय रूपरंभा 'होलिका' नामकी पुत्री थी, पिताजीने महोत्सव पूर्वक उसका विवाह किया था; मगर कर्मवशात् बाल–विधवा होगई; अतः निरन्तर पीयर में ही रहा करती थी.

एक समय होलिका अपने मकान के गवाक्ष में बैठी हुइ थी, उस समय समीप मार्ग से गमन करते हुये मगदेशाधिपति भुवनपाल भुपेन्द्र के पुत्र कामपाल कुमार को अवलोकनकर काम–व्याकुल बनी, राजकुमार भी अप्सरा समान श्रेष्ठीपुत्री को देखकर कामातुर हुवा–अन्तः पीड़ा से पीड़ित अपनी पुत्री को निहालकर सेठ दुखी हुवा.

इधर इसही शहर में एक परिव्राजिका वसती थी, वह ब्राह्मण कुलमें अवतरित चन्द्ररुद्र भांडकी पुत्री और अचलभूति भरडे की पत्नि 'ढुढा' नामसे मशहूर थी, उसकी निर्माल्य स्थिति होजाने से कूट–कपट पूर्वक कामन–ट्रमन का धंधा करती थी, और भिक्षा के लिये घर–घर भटका करती थी; लेकिन लाभान्तराय के कारण कहीं पर भिक्षा न मिलने से लोगों पर रोषा करती थी और इसही लिये कृशाङ्गी बनगई थी.

एकदा मनोरथ सेठने ढूंढाका सत्कारकर निवेदन किया कि—"हे मात! मेरी पुत्रीको सानुग्रह अच्छी करो?" तब एकान्त में योगिनी ने होलिका को पुछा–'हे पुत्रि! तेरी मनोगतचिन्ता प्रकाशित कर!"

कन्या ने अभिलषित फलकी लालसासे अपना हृदयस्थ भाव सर्व ज़ाहिर कर दिया, परिव्राजिका प्रसन्न होकर कहने लगी—" पुत्रि ! रविवार के दिन सूर्य भगवान् के मंदिर में पूजाके बाहने तू आना, वहाँ राजकुमार का मैं समागम करा दूंगी ! " लोक कहावत है कि—मनुष्यमेले में और रात्री जागरण के उत्सव में दुर्लभ मनुष्यों का भी समागम होजाता है और वहाँ यथेच्छ कामाभिलाष की भी सिद्धि होजाती है— सन्यासिनी के कथनानुसार होलिका रविवार को नियत स्थानपर पहूँची और पूर्व संकेतानुसार कुमार भी वहाँ आपँहुचा, पूजन करने के पश्चात् चलते समय राजकुमारने उसे स्नेहपूर्वक आलिंगन किया; दुनिया को बताने के लिये ढोंगकर कुमार के पीठपर हस्तप्रहारकर श्रेष्ठीपुत्री चिल्लाने लगी—" अहो ! परपुरुष के स्पर्शदोष की शुद्धि के लिये मैं अग्निप्रवेश करूँगी " यह हकीक़त जानकर कन्या का प्रेमीपिता उसको बलात्कार अपने घरपर लेगया; तत्पश्चात् फाल्गुन पूर्णिमा के दिन तपस्विनी ने पुनः उन दोनों का संगम कराया और कार्य सिद्ध होने से स्वयं उसके निकटवर्ती घरमे गाढ निद्राधीन होगई इस समय होलीका ने विचार किया कि—

षट्कर्णो भिद्यते मन्त्र-श्चतुष्कर्णो न भिद्यते ॥ द्विकर्णस्य च मन्त्रस्य । ब्रह्माप्यन्तं न गच्छति ॥ १ ॥

भावार्थ—छ कानवाली गुप्तवार्ता ज़ाहिर होजाती है, किंतु चार कानवाली प्रसिद्ध नहीं होती; और दो कानवाली गुप्तवार्ता का रहस्य तो ब्रह्मा भी नहीं जान सकता

उपर्युक्त विख्यात वाक्य का परमार्शकर होलीका ने अपने घरपर सोई हुई तपस्विनी तथा घर को जला दिया और शीघ्रही वहाँ से पलायन कर कुमार के साथ-अन्यत्र जावसी-प्रभात में अपनी पुत्री की प्रज्वलित अवस्था जानकर सेठने दयाजनक विलापात किया, लोगों ने उसे सती समझकर उसकी भस्म मस्तकपर चढाई भव्यात्माओं ! बस उसही दिन से प्रतिवर्ष होलिका का पर्व प्रवृत्त हुवा; वही पर्व आज़ भी परमार्थशून्य मनुष्यों से आचरण किया जाता है.

कितनेक दिन व्यतीत् होने के अनन्तर राजकुमार ने होलिका को कहा—" अब मेरे पास धन नहीं है. अतः मुझे परदेश जाना होगा " कन्या ने कहा—" स्वामिन् ! मेरा उप दर्शित उपाय आप करो, जिससे बहुत धनकी प्राप्ति होगी, देखिये—आप मेरे पिताश्री के दुकान से एक सुन्दर साड़ी मोल ले आईये

गा;" अपनी पत्नि के कथनानुसार कुमार ने मनोरथ सेठ के दुकान से एक साड़ी ले आकर अपनी रक्षितप्रिया को दिखाई; परन्तु उसने नापसंद की, कुमार फिर दुबारा ले आया, तदपि पसन्द न पड़ी; इस तरह चार–पाँच वार रदोबदल करने से सेठने कंटाला खाकर कहाकि—" भाई ! तुम अपनी भार्या को यहीं पर बुलालावो जिससे एकही दफामें कार्य हो जाय " मनमाना काम बन जाने से कुमार के साथ होलिका आकर साड़ियें देखने लगी, सेठ इसकी तरफ टकटकी लगाकर देखने लगा, तब सहसा कुमार बोल उठा–" श्रेष्ठीशिरोमणि ! तुमको इस प्रकार परस्त्री की ओर दृष्टिपात नहीं करना चाहिये."

सेठने कहा–" भाई मैं कोइ बुरी निगाह से नहीं निहाल रहा हूँ; किन्तु मेरे इस कदर अवलोकन का प्रयोजन यह है कि–" इसही प्रकार की समानाकार मेरी एक प्राणवल्लभा पुत्री थी. " कामपाल ने कहा कि–" भद्रिक सेठजी ! तुमारा कहना सत्य है ! समानाकार जानकर ही उस दिन सूर्यनारायण के मंदिर में तुमारी पुत्रीपर मुझे अपनी प्रेमदाकी भ्रान्ति हुई थी और उसही तरह आज़ मेरी पत्निपर तुमको भी अपनी पुत्री की भ्रान्ति हुई है. सेठ प्रसन्न होकर बोला कि—"अस्तु आज़से तुमारी पत्नि

मेरी पुत्री के स्थानपर कायम रहो," उस दिन से श्रेष्ठीवर खान-पान-वस्त्र-मकानादि समग्र सुख सामग्रियाँ उनके लिये पूर्ण करता था बस यह सम्बन्ध अभी यहीं पर रखकर परिव्राजिका की कुच्छ तलाश करलेते हैं—

ढूंढा परिव्राजिका मरकर व्यन्तरणी हुई, ज्ञानद्वारा अपना पूर्वभव जानकर नगरवासियोंपर कोपाटोप बनी कि 'इन दुष्टजनों ने मुझे कभी पूरी भिक्षा नहीं दी' अतः नाग्रिकजनों को मारने के लिये आकाशपट में एक जबरदस्त शीला विकुर्वी (रची) मगर प्रबल भाग्योदयवाली होलिका को मारने में असमर्थ हुई, शहर के समस्त लोगों ने भयाकुल होकर बलिदान दिया, तब पिशाचनी एक किसी के शरीर में आकर कहने लगी-" पूर्व के मेरे प्रेमपात्र दो कुल (भांड और भरड़े) को छोड़कर सर्व लोगों को मार डालुंगी " मरण भयकी भीतिसे भयभीत होकर सर्वजन भाड स्वरूप के आश्रित हुवे और अपने जीवन के लिये सज्जनता की मर्यादा को त्यागकर असभ्य वचन प्रलाप करते हुवे दुष्ट वाजिंत्र बजाने लगे; भस्म-धूल-कादव वगैरः उड़ाने लगे, इस तरह नानाविध शैतानी व्यवहार करते हुवे मलिन देहधारक सर्व भरड़े

समान होगये इससे व्यंतरणी प्रसन्न होकर अपने स्थानपर चली गई—तब से प्रतिवर्ष होलिका के दूसरे दिन रजःपर्व (धूलेटी) प्रचलित हुवा—आज़ भी उत्तम कुल में उत्पन्न हुवे मनुष्य सभ्यता का त्यागकर इस म्लेच्छ पर्व का आराधन करते हैं; यह खेदजनक है! सज्जन श्रोताओं! अब होलिका का पूर्वभव सावधान होकर सुनो—



होलिका का पूर्वभव.

पाटलीपुत्र नगर के अन्दर ऋषभदत्त संज्ञक एक सेठ निवास करता था, उसके चन्दना नाम की भार्या थी तथा दो पुत्रों के ऊपर रूप—लावण्यादि गुणों से सुशोभित 'देवी' नाम की एक कन्या थी, आठ वर्ष की उम्र में मात—पिताओं ने उसे पढाना शुरू किया, क्षयोपशम के प्रताप से थोड़े ही समय में विदुषी बनगई माता के साथ सामायिक—पौषद—प्रतिक्रमणादि धर्मक्रिया करती हुई यथाशक्ति व्रत—

नियमादि का पालन करती थी–सेठ के पड़ोस में कितनेक मिथ्यादृष्टी लोग रहते थे, उनकी पुत्रियों का और देवी का सहचार हुवा, बैठना, उठना, फिरना सब साथ में हुवा करता था, कभी २ भूदेव (ब्राह्मण) की कथा श्रवण करने के लिये जाया करती थी; यद्यपि जैनधर्म को पालती थी तदपि 'संसर्गाज्जायते दोषः' इस नियम के अनुसारमिथ्याधर्म का भी आदर करती थी, अर्थात् चैत्र मास में गणगोर की पूजन से सुन्दर वरकी उपलब्धि और धन–धान्य की प्राप्ति होती है, इत्यादि वार्ता उसको रुचती थी

एक दिन देवी ने विचार किया कि–" जैन धर्म में तो वीतराग देव हैं, वे किसी का भला–बुरा नहीं करते और सांख्यादि दर्शन में तो ब्रह्मा जगत् का कर्त्ता है, विष्णु पालक और महादेव संहारक है, अत. यदि शंकर–पार्वती–की पूजन की जायतो मनोवांछित सांसारिक विलासों का लाभ होगा, इस मुजब निश्चयकर गणगोर प्रभृति पर्वों की आचरणा करने लगी; पुत्री को मात—पिताने बहुतेरा मना किया कि—" हे कन्ये! मिथ्यापर्वों की आराधना मत कर, चिन्तामणि समान जैन धर्म को छोडकर काच के

टुकड़े समान अन्य धर्म को मत स्वीकार–अमृत रसका त्यागकर विषपान मत कर! ज़हर के पीने से तूँ दुःखी हो जायगी" इत्यादि बहुत कहा; मगर जैनेतरों के सहवास से एक भी बात उसने न मानी, प्रत्युत अतिशय छूटसे लौकिक पर्वाराधन करने लगी, ज्यों २ मिथ्यादृष्टी उसकी प्रशंसा करने लगे त्यों २ अधिकाधिक आनन्द मानने लगी; आख़ीर मात–पिताओं ने अपना फ़र्ज़ अदा करने के लिये उसे विवाहित करदी वह बालिशा अल्पकाल में ही मरकर मनोरथ सेठ के घर 'होलिका' नाम की पुत्री हुई, बालपने से ही जिस के साथ मिथ्यापर्वों का आराधन करती थी वह कथाव्यास की पुत्री मरकर 'ढूंढा' हुई और कथाव्यास कालकर 'कालपाल' नामक राजकुमारपने उत्पन्न हुवा, पूर्व सम्बंध के कारण ढूंढाने होलिका को कामपाल का समागम कराया—इस प्रकार होलिका पर्व की असभ्य प्रवृति जानकर भव्यात्माओं को आचरणा न करनी चाहिये; किन्तु उसदिन अपने श्रेयके लिये सामायिक–प्रतिक्रमण–प्रभुपूजा–व्रत–नियम इत्यादि करना समुचित है–होलिका की प्रवृत्ति में अनेक प्रायश्चित प्राप्त होते हैं. तथाहि—

पर्व प्रवृत्ति में प्रायश्चित.

धर्माभिलाषियों ! जलती हुई होली मे जो एक मुट्ठी मात्र गुलाल डाले तो (१०) उपवास का प्रायश्चित. एक कलश प्रमाण जल प्रक्षेपण से (१००) उप०, मूत्र क्षेपण से (५०) उप०, एक कन्डा डालने से (२५) उप०, एक नग्न शब्द बोलने से (२५) उप०, कुत्सितगीत गाने से (१५०) उप० असभ्य वाजित्र वजाने से (७०) उप०, और शुष्कछाण प्रक्षेण से (२०) उपवास का प्रायश्चित लगता है; तथा छोटे छीने (फरफोलिये) का हार डालने से (१००) वार स्वयं जलकर मरता है, श्रीफल के डालने से (१०००) वार, जलकर०, एक सुपारी क्षेपण से (५०) वार जल०, मुट्ठीभर धूल गेरने से (२५) वार जल०, होलिका का गड्डा खोदने से (१००) वार जल०, और काष्ट डालने से हज़ारों वार जलकर

मरना पड़ता है; इतना ही नहीं ! किन्तु होलिका को सिलगाने वाला हजारों वार चंडाल कुल में उत्पन्न होता है और होलीका व्रत करनेवाला हज़ारों वार म्लेच्छ कुल में जन्म लेता है.

इस प्रकार पापरूपी पर्व समझ करके आत्महितेच्छुओं को द्रव्य होलीका त्यागकर कल्याणार्थ भाव होलीका आदरपूर्वक आराधन करना इष्ट है—इतिशम्.



उपसंहार—इस होलिका के आख्यान में पर्व की उत्पत्ति, होलिका का पूर्वभव और पर्व प्रवृत्ति से प्रायश्चित वगैरः विषय संक्षेप से चर्चे गये हैं; एवं यह पर्व निकृष्ट लोगों के आचरणीय है, इसको सिद्ध कर दिखाया है; अतः इसपर दूरदर्शी की तरह आलोचनाकर आत्महितार्थ इस पापमय पर्व का परित्याग करना—सुबुद्धिर्भवतु सर्वेषाम्.

प्रशस्तिका

अग्नि सिद्धि वसु चन्द्रमा (१९८३) मौन दिवस अभिराम ॥ कच्छ देश मुन्द्रा नगर । रचा होलिका नाम ॥ १ ॥
सुखसागर भगवान गुरु । त्रैलौक्य गुरु शिरताज ।' आनन्दरत्नाकर वदे । व्याख्यान हितकाज ॥ २ ॥



⊛ नौवाँ श्री होलिका का व्याख्य सम्पूर्ण ⊛

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



❋ दसवाँ–श्री चैत्रीपूर्णिमा व्याख्यान ❋



शत्रुंजयजिनवर नमुं । गणधर गुरु हितकार ॥ उपाख्यान मनहर रचुं । चैत्रीपूनम सार ॥ १ ॥

विश्ववंद्य, जगदुद्धारक, परम पुरुषोत्तम, देवाधिदेव, श्रीतीर्थंकरदेव को प्रणमनकर तथा परममार्गदर्शक, विश्वहितैषी गुरुदेव को अभिवंदन करके यह श्रेयमार्ग प्रकाशक 'श्री चैत्रीपूर्णिमा व्याख्यान' संस्कृत परसे हिन्दीभाषा में संकलित करता हूँ; भव्य धर्माभिलाषियो ! इस उत्तम व्याख्यान को शान्तिपुरस्सर श्रवणकर अपना श्रेय करना.

मूल—आख्यान

सिज्झो विज्झायर चक्की। नमि विनमि पुडरिओ मुणिन्दो॥ बाली पज्जुन्न संबो। भरह सुकमुणी सेलगो पथगो य ॥ १ ॥
रामो कोडीय पच। द्राविड नरवइ नारओ पुड्पुत्ता॥ मुत्ता एवं अणेगे। विमलगिरीमह तित्थमेयं नमामि ॥ २ ॥

परम पावन तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय तीर्थपर विद्याधर–चक्रवर्ती नमि–विनमि–पुंडरीक गणधर–वाली–प्रद्युम्न–सांब–भरत–शुक–शैलक–पंथक–रामचन्द्र–द्राविड नरपति–नवनारद–पांडव; इत्यादि अनेकानेक उत्तम पुरुष निर्वाणपद को प्राप्त हुवे हैं—इस पुनित चैत्री पूनम के दिन पाँच क्रोड मुनिवर मुक्तिललना के सहचारी हुवे हैं, अतएव यह शुभ दिन महान् पर्व के नाम से नामांकित है–इस दिन खास गिरिराज की यात्रा का अलभ्य लाभ लेना चाहिये, यदि कर्मवशात् जाना अशक्य हो तो श्रीशत्रुंजय गिरिवर के सन्मुख दिशामें जाकर चैत्यवदन प्रमुख से अविभक्त भक्ति करनी चाहिये इस पावन गिरिराज

पर फाल्गुन शुद दसम के दिन नामि–विनामि और चैत्रीपूर्णिमा के दिन पुंडरीक गणधर मोक्ष पधारे हैं; उन के आख्यान क्रमशः प्रकाशित करते हैं—

❁ नमि–विनमिका दृष्टान्त. ❁

परम परमात्मा श्री ऋषभदेव स्वामी ने अपने जेष्ठपुत्र भरतचक्रवर्ती को मूलराज्य और अन्य पुत्रों को यथायोग्य देश प्रदानकर अयोध्या नगरी में दीक्षा अंगीकार की, उस समय पोषक पुत्र (पाले हुवे पुत्र) नामि–विनमि किसी कार्य के लिये कहीं पर गये हुवे थे, राज्य विभाग के समय भगवान् उन को विस्मृत होगये, दीक्षा के अनन्तर अयोध्या में आकर उनने भरत को पूछाः—"हमारे पिताश्री ऋषभदेव भगवन्त कहाँ हैं?" प्रत्युत्तर प्राप्त हुवा कि "स्वामी तो प्रव्रज्या ग्रहण कर गये, तुम उभय भ्राता मेरी

सेवा करो, मैं तुमको देश–गाम–ग्रास दूंगा !, सुनते ही भरत का अपमानकर राज्यार्थ स्वामी के समीप आये, विहार के वख्त भगवान के आगे २ कांटे साफ करने लगे और काउसग्ग के समय डांस–मच्छरादि उडाने लगे, प्रात.काल में " स्वामिन् ! राज्यप्रदो भव " अर्थात् हे प्रभो ! राज्य दो, इस मुजब हमेशां याचना किया करते थे

अन्यदा वन्दनार्थ आये हुवे धरणेन्द्र ने उनपर प्रसन्न होकर भगवद्रूप द्वारा ४८ हज़ार पठित सिद्धाविद्या प्रदान की और सोलह विद्यादेवियों का आराधन दिया तथैव वैताढ्य पर्वत के ऊपर दक्षिण श्रेणी में रथनपुर—चक्रवाल प्रमुख पचास नगर और उत्तर श्रेणी में गगनवल्लभ वगैरः साठ नगर बसाकर उनको भेंट दिये विद्या बलसे वस्ती में बहुत लोग बसा दिये; जितने नगर थे उनको देश तरीके स्थापनकर दोनों भाई पृथक् २ आनन्द पूर्वक राज्य पालने लगे. चिरकाल पर्यन्त राज्य लीला की लहेरकर अखीर समस्त सयोग को परित्याग कर भवतारणी दीक्षा अगीकार करली; पश्चात् विमलाचलपर आकर देवाधिदेव

श्रीऋषभदेव प्रभुको भावपुरस्सर अभिवंदन कर दो दो क्रोड़ मुनियों के साथ उसही पतितपावन तीर्थशिरोमणि श्री शत्रुंजय पर नमि—विनमि महामुनीश्वर मोक्ष पधारे अब प्रथम तीर्थंकर के प्रथम गणधर का आख्यान प्रदर्शित करते हैं:—



पुंडरीक गणधर का आख्यान.

श्रीआदिनाथ भगवन्त के वृहत् पुत्र भरतचक्रवर्ती उनके पुत्ररत्न श्रीपुंडरीकजी प्रभुकी धर्मदेशना श्रवणकर प्रतिबोध को प्राप्त हुवे और भवतापहरणी दीक्षा लेकर प्रथम गणधर पदपर सन्निष्ट हुवे, पांचक्रोड़ मुनि के परिवार परवृति गणधर महाराज ग्रामानुग्राम विचरते हुवे सौराष्ट्र (सोरठ) देश में पधारे; महापुरुषका आगमन सुनकर अनेक भूप, मांडलिक, सामन्त, श्रेष्ठी और नर–नारियों का वृन्द गुरुपुङ्गव को

वन्दनार्थ आया गणधर महाराज ने समयानुकूल धर्मप्रवचन किया, उस समय चिन्तासागर प्रविष्टा, सजलनेत्रा एक दीन महिला उपस्थित हुई, उस के साथ एक दौर्भाग्य, विधवा कन्या भी थी; श्री पुंडरीकजी महाराज को भावपूर्वक नमस्कार किया और अवसर पाकर विनम्र भाव द्वारा इस प्रकार पूछा—' हे भगवन्! इस कन्या ने पूर्व ऐसा क्या पापकर्म किया था कि करमोचन के समय ही उसको वैधव्य प्राप्त हुवा ? " गुरुदेव ने फरमाया—' महाभागे ! अशुभ कर्म का फल अशुभ ही होता है, ' तुम इसका पूर्वभव लक्षपूर्वक सुनोः—

⊛ दौर्भाग्यवती कन्या का पूर्वभव ⊛

जम्बूद्वीप के अन्दर पूर्वमहाविदेह में मनोरम, जगत्प्रसिद्ध, कैलास पर्वत के समान उच्च किले से वेष्टित, नानादेश में जन्म पाये हुवे मनुष्यों से आकीर्ण, विशाल गगनचुम्बित मकानो से भूषित ' चन्द्रकान्त ' नामक एक नगर था, वहाँ लक्ष्मीनिकेतन रूप, सकल कला गुणगणगरिष्ट, विश्वविख्यात ' अमरसिंह '

दिखाओ कि जिससे इसका दुष्टकर्म का विपाक विध्वंस हो" गुरुवर्य ने ज्ञानबल द्वारा जानकर उसके लायक व्रत इस तरह फरमाया—"हे भद्रे ! चैत्रीपूर्णिमा की आराधना करो, जिससे पूर्वोपार्जित कर्म नष्ट होजायगा." ऐसा सुनकर कन्या को गुरुमाहाराज के दिव्य ज्ञान पर रुचि उत्पन्न हुई, तब वह सावधान होकर गुरुवाणी सुनने लगी; गणधर महाराज ने उपदेश किया—"श्रीसिद्धाचलजी तीर्थ शास्वत है, वहाँ अनन्तकाल की अपेक्षा अनन्त जीव सिद्ध हुवे हैं, सकल तीर्थों में मुख्य तीर्थाधिराज है, उसके गुणनिष्पन्न इक्कीस नाम हैं, उनके ज़रिये ध्यान करना उचित है और विधिसहित पर्वाराधन करना चाहिये." तथाहि—

❀ पर्वाराधन की संक्षेप विधि ❀

चैत्री पूर्णिमा के दिन शुभ भाव से चौविहार उपवास करके जिनभुवन में स्नात्र पूजादि महोत्सव करना चाहिये, समस्त जिनेश्वर की भक्तिपूर्वक द्रव्य और भावपूजा करना श्रेयस्कर है, उस दिन गुरुमहाराज के मुखसे 'चैत्रीपूर्णिमा का व्याख्यान' अवश्य सुनना, दान देना, शील पालना, जीवरक्षा

वगैर. करना चाहिये, विमल गिरिराज का पट्ट उच्च स्थानपर स्थापन कर मोति-अक्षत-फल-फूल प्रमुख से पूजना विधिमार्ग है और गुरुमहाराज के साथ या समक्ष पंचशक्रस्तव से देववदन कर शुभ ध्यान द्वारा अहोरात्रि व्यतीत करनी चाहिये-पारणे के दिन मुनि महात्मा को प्रतिलाभकर पारणा करना; इस प्रकार पन्द्रह वर्ष पर्यन्त यह उत्तमोत्तम पर्व आराधन करना, अन्ते यथाशक्ति उद्यापनकर कृतकृत्य होना चाहिये.



विधिमार्ग वताने के वाद गणधर महाराजने पर्व का फल प्रकाशित करते हुवे फरमाया कि-इस पर्व के आराधन से निर्धन धनिक होता है, पुत्र-कलत्र-सौभाग्य-कीर्ति और देवसुख की प्राप्ति होती है, स्त्रीको पतिवियोग नहीं होता, रोग-शोक-विधवापन-दौर्भाग्य-मृतवत्सता-परवशता इत्यादि कर्म नाश होजाते हैं, प्रेमदा पतिवल्लभा होती है, विषकन्यापन (स्पर्शमात्र से जहर चढ जाय) भूत-प्रेत-शाकिनी-ग्रह आदि सर्व कष्ट विनष्ट होते हैं, विशेष कहाँ तक कहें इस पर्वके समाराधन से परमपद (मोक्ष) प्राप्त होता है.

पर्व का आराधन और अपूर्व फल

गणधर महाराज के मुखकमल से पर्व का आख्यान सुनकर बालिका ने सहर्ष व्रत करना स्वीकार किया; पश्चात् गुरुदेव को प्रणमन कर अपनी जननी के साथ स्वस्थान पर चली गई—समय की उपस्थिति होने पर कन्या ने चैत्रीपूर्णिमा पर्व का आराधन किया, जिससे सुखी हुई, विषयाशक्ति प्रशान्त हुई और परमपद के प्रति मनोवृत्ति झुकी; अब प्रतिवर्ष व्रत करने लगी, व्रत के पूर्ण होजाने पर शुभ भाव से उजमना किया; अखीर श्री पुंडरीक गणधर के ध्यान से, श्रीसिद्धाचलजी की यात्रा से और श्रीऋषभदेव-स्वामी का जाप जपने से अनशनतप करके सौधर्म देवलोक में देवपने उत्पन्न हुई, वहाँपर देव सम्बन्धि सुख भोगकर महाविदेह क्षेत्र के अन्दर सुकच्छ विजयान्तरगत वसन्तपुर नगर का अधिपति नरचन्द्र

नृपति के राज्य में ताराचन्द्र श्रेष्ठी के गृह पर तारा नाम की भार्या के कूक्षी में वह जीव पुत्ररत्नपने अवतरित हुवा, नाम 'पूर्णचन्द्र' रख्वा गया, बहत्तर कलाओं से विभूषित था, १५ क्रोड़ द्रव्य, १५ भार्याएँ १५ पुत्र वगैरा समस्त सुख की प्राप्ति हुई, इस भव में पुनः चैत्री पर्व का आराधन किया, प्रान्ते श्री जयसमुद्र महाराज के पास भवोच्छेदिका प्रव्रज्या अंगीकार की, उस परम विश्राम धाम मे शुभ ध्यान द्वारा केवल ज्ञान उपार्जनकर निर्वाणपदको प्राप्त हुवे–तुभ्य नमः पुरुषोत्तम !



इस मुज़ब चैत्रीपूनम का आराधनकर अनेक मुनि निर्वाण पद को पहुचे, विमलाचल तीर्थपर वाली–शाम्ब–प्रद्युम्न प्रभृति अनेकानेक उत्तम पुरुषों ने सिद्धिस्थान उपलब्ध किया–चैत्रीपूर्णिमा के दिन उपवास कर जो प्राणी श्रीसिद्धाचल तीर्थपर पूजा–ध्यान–दानादि धर्मकृत्य करता है वह नरक–तिर्यंचगति का छेदन करता है, उस दिन मंत्राक्षर से पवित्र बना हुवा स्नात्रजल घर में सींचन करना चाहिये

जिससे मरकी आदि उपद्रव विनष्ट होजाते हैं और सदा—सर्वदा ऋद्धि—वृद्धि आनन्द—सुख प्राप्त होता है इस पर्व पर कइयक भव्यात्माओं दान देते हैं, कइयक शील पालते हैं और कइयक भावना भाकर अपना कल्याण करते हैं, इस तरह सुज्ञ श्रोताओं को भी पर्वाराधन कर अपना श्रेय करना चाहिये—इति शम्.

उपसंहार—महानुभावो ! इस चैत्रीपूर्णिमा के व्याख्यान में श्री विमलगिरिवर का आदर्श बताने के साथ नमि—विनमि और पुंडरीकजी गणधर के आख्यान प्रदर्शित किये हैं तथा पर्व का महात्म्य प्रकाशित करते हुवे एक बालिका का जीवन प्रतिपादन किया है; उस पर शान्तिपुरस्सर परामर्शकर श्रेयमार्ग को अंगीकार करना—शिवमस्तु समस्तानाम्.



प्र श स्ति का.

गुण गजेन्द्र नारद धरा (१९८३) पौषदमश सुखकार ॥ पाटनगर भुज कच्छमें । पूर्ण किया श्रीकार ॥ १ ॥
सुख भगवान त्रैलोक्य गुरु । कृपासिंधु आधार ॥ आनन्द सागरने रचा । चैत्रीपूनम सार ॥ २ ॥



⊛ दसवाँ श्री चैत्रीपूर्णिमा व्याख्यान सम्पूर्ण ⊛

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः



✻ ग्यारहवाँ-श्री अक्षयतृतीया व्याख्यान ✻



धर्मजिनवर नमन करी । गुरुवर गुणभंडार ॥ रचना अक्षयतीजकी । उज्ज्वल तप आधार ॥ १ ॥

अशेष विज्ञानकलित, त्रिकालदर्शी, अपरिमित सुखानुभवी, परमब्रह्म परमात्मा को अभिवंदनकर तथा परमपद प्रयासी, देहाध्यासत्यागी, शान्तस्वरूपी, परम गुरुदेव को नमस्कार करके यह उज्ज्वल तपप्रबोधक 'श्री अक्षयतृतीया व्याख्यान' संस्कृत परसे भारतीय भाषा में व्यवस्थित करता हूँ; मुमुक्षों ! इस पावन आख्यान को श्रवणकर अपनी जीवनदशा निर्मल करना.



मूल-प्रबंध

उसभस्सय पारणाए । इक्खुरसो आसि लोगनाहस्स ॥ सेसाणं परमान्न । अमियरससरिसोवम आसि ॥ १ ॥

अष्टादश कोटानुकोटी पर्यन्त प्रलयप्राप्त धर्म के समुद्धारक जगन्नाथ श्रीऋषभदेव स्वामिका प्रथम पारणा इक्षुरस से हुवा और अवशेष जिनेश्वरों का अमृतरस सदृश परमान्न (क्षीर) से प्रथम पारणा हुवा—यहां पर श्री आदीश्वर भगवन्त का संक्षिप्त वृतान्त और पारणे सम्बंधी सम्पूर्ण घटना प्रकाशित करते हैं:—



परमात्मा का पारणा और श्रेयाँस कुमार को अपूर्व लाभ

जगद्गुरु श्री ऋषभदेव स्वामी सर्वार्थ सिद्ध विमान से च्यवकर आषाढ विदि चौथ के दिन श्री मरुदेवी माताकी रत्नकूक्षि में उत्पन्न हुवे, चार दिन अधिक नौमास गर्भ में रहकर चैत्रविदि अष्टमी के दिन मध्य रात्री में अवतरित हुवे, २० लाख पूर्व कुमारपद में रहे और (६३) लक्ष पूर्व राज्य शासन को पालकर चैत्रकृष्णा अष्टमी के दिन प्रव्रज्या अंगीकार की पूर्व अन्तराय कर्म के उदय से आहार की अप्राप्ति के कारण एक वर्ष पर्यन्त निराहारपन से विचरते हुवे प्रभु क्रमशः हस्तिनागपुर नगर में पधारे.

इस नगर में श्री बाहुबलजी का पुत्र सोमयशः राजेन्द्र राज्य करता था, उसके श्रेयाँसकुमार नामक एक पुत्ररत्न था—जिस दिन भगवन्त नगर में पधारे हैं उसही रात्री में राजकुमारादि तीन भव्यों को पृथक् २ तीन स्वप्न मिले, तथाहि पहिला स्वप्न श्रेयाँसकुमार को मिला कि—" श्यामता से श्यामिभुत मेरुपर्वत को अमृत घड़ो से धोकर मैंने उज्ज्वल किया " दूसरा स्वप्न तत्र निवासि सुबुद्धि सेठ को मिला कि—" सूर्यबिंब से पतित सहस्त्र किरणें श्रेयाँस युयराज ने पुनः सूर्यबिंब में स्थापन की " तीसरा स्वप्न सोमयशः नृपेन्द्र को मिला कि—" अनेक वैरियों से घिराहुवा एक सुभट श्रेयाँसकी शायता से विजय को प्राप्त हुवा "—प्रात. कालकी सभामें समग्र लोग मिले और अपना २ स्वप्न प्रकाशित किया, सुनकर राजा वगैरः सर्वने कहा कि श्रेयाँसकुमार को आज़ कोइ अपूर्व लाभ होगा.

इस अवसर में भगवान् इधर-उधर भ्रमण करते हुवे श्रेयाँस के घरपर भिक्षा के लिये पधारे, महलके उच्चगवाक्ष में बैठा हुवा कुँवर प्रभु को देखकर हर्षित हुवा—साधुमुद्रा को कोइ दिन नहीं देखने से और आहार देने की विधि नहीं जानने से अज्ञात लोग सोना—चान्दी—मणि—माणक—हाथी—घोडा प्रभृति

का आमन्त्रण करते; परन्तु परमात्मा तो कोइ भी वस्तु अंगीकार नहीं करते; अतएव लोग ऐसा समझते कि " भगवान् हमपर रुष्टमान हुवे हैं, इससे हमारी कोइ चीज़ नहीं लेते " इत्यादि बोलते हुवे कोलाहल करने लगते थे; इस तरह एक वर्ष सम्पूर्ण हुवा-आख़िर इस वख्त श्रेयाँसकुमार भगवन्तमुद्रा अवलोकन कर सहसा बोल उठा-" अहो ! दृष्टं मया ईदृग् रूपं कदाचित् " अर्थात् अहो ! मैने ऐसा रूप कोइ समय देखा है; इस तरह पारमर्श करते हुवे 'जातिस्मरण ज्ञान' उत्पन्न हुवा और भगवान् के साथ अपना अष्ट भव का सम्बंध जानकर तथा स्वयं अनुभूत साधु धर्म का स्मरणकर विचार करने लगा कि—

" अहो ! संसारी जीवों की कैसी अज्ञान दशा है ? कि जिससे इस तरह कोलाहल करते हैं-त्रैलोक्यराज्य को तृणसमान मानते हुवे भगवान् विषयसुख का त्यागकर, सांसारिक सुख को किंपाक फल के तुल्य गिनते हुवे दीक्षा अंगीकार कर, मोक्ष सुख का यत्न करते हुवे अनर्थ का मूल कारणभूत परिग्रह की लेशमात्र भी वाँच्छा नहीं करते; तो फिर मणि-सुवर्ण-हाथी-घोड़ा-मुक्ताफल आदि की तो बात ही क्या है ? " ऐसा सुष्ठु विचारकर गोख से नीचे उतरा और हर्ष से पुलकित शरीर होकर भगवन्त

श्री ऋषभदेव स्वामी को तीन प्रदिक्षणा पूर्वक वंदनकर नम्रता से राजकुमार बोला–" अहो प्रभो! प्रसन्न हो, अठारह कोडाकोडी सागरोपम पर्यन्त विछिन्न हुवे प्रासुक आहार के देने की विधि का सम्यक् प्रदर्शन कराकर भव्य जीवों का निस्तरण करो! मेरे घरपर भेटतरीके आये हुवे इक्षुरस के एक सौ (क्वचिद् एक सौ आठ) घडे हैं, उन्हें सानुग्रह ग्रहण करो?" परमात्मा अपने चार ज्ञानद्वारा द्रव्य–क्षेत्रादि सामग्री की योग्यता जानकर रस ग्रहण करने के लिये तत्पर हुवे–इस समय कविकल्लोलता × से हस्तद्वय का संवाद कहते हैं—

" हाथ पसारने के समय जीमना हाथ बांये हाथ को कहने लगा कि हे वामहस्त! भिक्षा तू मांग! कारण कि मेरी आदर्श उच्चता की वज़ह मैं नहीं मॉग सकता, देख–मैं सदा दान देनेवाला हूँ, तो दान लेने के लिये दातार के पास कैसे जासकता हूँ? मैं सर्वदा ऊपर रहा हूँ तो इस वख्त नीचे कैसे रह सकता हूँ? राज्याभिषेक में देवपूजा में, नाटक विधान में, लेखन में, भोजन में तम्बोलदान वगैरः तमाम पवित्र

× 'कविकल्लोलता' कल्पसूत्रटीका से उध्धृत की है

कर्मों में मेरा प्रधान पद है तो फिर मैं भिक्षा समान नीच कर्म कैसे कर सकता हूँ ? और हे वाम ! तू तो सदासे अपवित्र कार्य करता आया है; अतः यह भिक्षा कर्म भी तू ही कर; इत्यादि—अपना भयंकर अपमान समझ कर कोपयुक्त बांया हाथ बोला—अरे उदरभरण तत्पर दक्षिणहस्त ! तू इस प्रकार क्या अहंकार करता है और भान भूले हुवे कि तरह क्या प्रलाप करता है ? भोजनादि सदृश सरल कार्य में आगे होजाता है; मगर हे कायर ! रणक्षेत्र में शत्रुओं के समक्ष बाण छोड़ने के समय तू पीछे २ भगता है और वीरयोद्धा बंदा तो सदा मोरछे में आगे रहता है; हे दुष्ट ! तू मुझको नीच कहता है; परन्तु तुझे अपनी नीचता का पता नहीं है, खाली मीठी २ बाते बनाकर संसार को ठगता है, क्षुद्र ! जा तू भिक्षा मांग—बारह महिने तक क्षुधा सहन करने के पश्चात् कठिनता से पारणे का जब योग मिला तब इधर दोनों हाथों के बीच अपनी उच्चताका संवाद होने लगा; इस प्रकार की अवदशा देखकर भगवन्त ने दोनों का समाधान किया कि—अहो हस्तकमलों ! जगत् को तुम दोनों की आवश्यकता है; अतएव तुम दोनों एकत्र होजावो परमात्मा की आज्ञा दोनों करों ने शिरोधार्य की—

तव शीघ्र ही प्रभु ने रसग्रहणार्थ दोनों हाथ पसारे, अतिशय हर्ष से भरे हुवे चित्तवाले श्रेयाँसकुमार ने अपने को धन्य मानते हुवे त्रिकरण शुद्धिद्वारा रत्नपात्र तुल्य जगत्पूज्य भगवन्त को विशुद्ध सेलड़ी का रस वहेराकर तृप्त किये, उसही समय देवताओं ने प्रसन्न होकर 'पंच दिव्य' प्रकट किये तद्यथा—

घुट्ट च अहो दाण। दिव्वाणिय आहयाणि तूराणि॥ देवावि सन्निवाइया। वसुहारा चेव वुट्ठाय॥ १॥

भावार्थ—देवताओं ने अहोदानं-अहोदानं की उद्घोषणा की १ दिव्य वाजित्र वजाये २ आकाश में देवदुदुभी वजाई ३ तिर्यग् जृम्भकादि वहुत से देव आये ४ साड़ावारह क्रोड़ सोनैयों की वर्षा की, उपलक्षण से सुगंध पुष्पों की और सुगध जल की वृष्टि भी की ५

श्रुतकेवली भगवान् भद्रवाहु स्वामिका कथित 'उसभस्सउ पारणाए०' गाथा के अनुसार श्रीऋषभदेव प्रभु का पारणा इक्षुरस से हुवा, परमात्मा का वैशाख शुद तीज के दिन श्रेयाँस कुमार के घर पारणा हुवा, उस महादान से युवराज को अक्षय सुख प्राप्त होने से वह मगल दिन 'अक्षय तृतीया' (आखातीज), पर्व के नाम से सुविख्यात हुवा सुपात्र दान की महिमा आदर्श है, देखिये—

भवणं धणेण भुवणं । जसेण भयवं रसेण पडिहत्थो ॥ अप्पा निरुवं सुक्खं । सुपत्तदाणं महग्घवियम् ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस समय श्रेयांसकुमार ने भगवन्त को पारणा कराया उस समय राजकुमार का घर सुवर्ण-रत्नादि धन से भर गया तथा स्वर्ग-मर्त्य-पाताल लोकत्रय युवराज के यशसे भरगया (श्रेयांस कुमार ने त्रिजगत्पति को पहिले किसी ने नहीं दिया ऐसा अपूर्वदान दिया; अतएव कुमार की जगत्रय में कीर्ति फैली) और श्रीऋषभदेव स्वामी इक्षुरस से तृप्त हुवे, इससे दानपूर्वक संयम के लाभ से श्रेयाँस कुमार निरुपम सुख (मोक्ष सुख) को प्राप्त हुवे; इसही लिये सुपात्रदान प्रशंसनीय है संयोगत्रय की शुद्धि से अवश्य मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है. सुनिये—

रिसहेससमं पत्तं । निरवज्जं इक्खुरससमं दाणं ॥ सेयांससमो भावो । हविज्ज जइ मग्गियं हुज्जा ॥ ३ ॥

भावार्थ—ऋषभदेवस्वामी सदृश उत्तमपात्र, इक्षुरस समान निर्दोष आहार और श्रेयाँसकुमार बराबर उग्र भाव; ऐसे तीनों श्रेष्ठ योग जो प्राप्त हों तो मुंह मांगी वस्तु की प्राप्ति होती है; अर्थात् मोक्षसुख तक की उपलब्धि होती है.

यहाँ पर कोइ आशंका करे कि त्रैलोक्यपूज्य भगवन्त को ऐसा कौन अन्तरायकर्म प्राप्त हुवा था कि जिससे इतने कालतक आहार न मिलसका ? उत्तर में विदित हो कि पूर्वकृत कर्मोदय का ही यह प्राबल्य था; देखिये—

कर्मराज का प्राबल्य.

किसी एक पूर्वभव में ऋषभदेव स्वामी के जीव ने मार्ग में गमन करते समय धान्य के खले में अनाज़ खाते हुवे बैलोंपर श्राजवे की मार पड़ती हुइ देखकर विचार किया कि—" ये किसान लोग मूर्ख हैं, बैलों के मुखपर छींकी बांधना नहीं जानते " बस उसही समय काश्तकारों को उपदेश दिया; मगर इस कार्य में उनने अपनी अज्ञता ज़ाहिर की, तब मुसाफिर ने स्वय तैयार करके वृषभों के मुखपर छींकियाँ

बांध दीं; उस वख्त बलीवर्दों को अनाज़ नहीं मिलने से निःश्वास डाले उनकी संख्या (३६०) प्रमाण में हुई, बस वहीं प्रभु के जीवने अन्तराय कर्म उपार्जन किया और उसही कर्म के उदय से प्रभु को वर्षपर्यन्त शुद्ध भिक्षा रूप आहार न मिलसका, आख़िर कर्मों का क्षयोपशम होने पर श्रेयाँसकुमार का दिया हुवा आहार उपलब्ध हुवा—अहा ! कर्मराज जब कि पुरुषोत्तम तीर्थंकरदेवों को भी नहीं छोड़ता तो फिर सामान्य जीवों का तो कहना ही क्या ? नमोनमः कर्मराजेभ्यः !

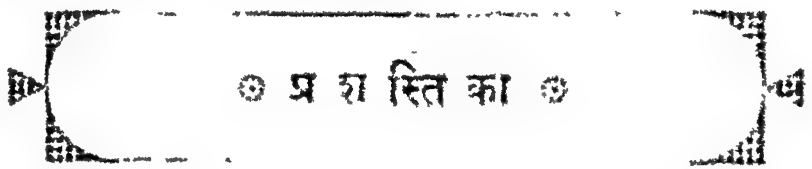
श्रेयाँस कुमार ने सुपात्र दान से निर्वाणफल प्राप्त किया और उसही दिन से प्रासुक आहार दान की विधि लोगों को विदित हुई; अर्थात् संसार में आहार देने की शुद्ध प्रवृत्ति प्रवृत्त हुई—पश्चात् परमात्मा श्री ऋषभदेव प्रभु नें एक हज़ार वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहकर उग्र तपस्या द्वारा घनघाति चार कर्मों का सर्वतः क्षयकर 'केवलज्ञान' उपार्जन किया, अनन्तर एक हज़ार वर्ष कम एक पूर्वलाख वर्ष पर्यन्त भूमंडल में विचरकर अनेक भव्यजीवों को प्रतिबोध देकर अनन्त सुख स्वरूप मोक्ष में पधारे—ऐसा सुनकर अहो भव्यात्माओं ! रत्नत्रयात्मक मुक्तिमार्ग में आदर पूर्वक यत्न करना—इति श्रेयः.

रोहिणी का संक्षिप्त जीवन

एक समय अंगदेशान्तरगत चंपानगरी मे श्री वासुपूज्य स्वामी का पुत्र 'मघवा' नामक राजा राज्य करता था, उसके एक सुन्दर स्वभाववाली सदाचरणी 'लक्ष्मी' संज्ञिका रानी थी, तथा अष्ट पुत्रों के ऊपर चौसठकलाकलिता, रूप–लावण्यदेदिप्ता, सौभाग्यगुणभूषिता, 'रोहिणी' नाम की एक पुत्री थी, क्रमशः वह यौवनावस्था में प्राप्त हुई, नृपेन्द्र ने वरयोग्या जानकर एक जबरदस्त स्वयंवर– मंडप रचा और अनेक राजकुमारों को आमंत्रित किये, समय पर सर्व कुमार मंडप में आ आकर अपने २ योग्य स्थानपर स्थानापन्न हुवे.

उस वख्त राजकुमारी रोहिणी ने स्नान–मज्जनादिकर दुग्ध समान श्वेतवस्त्र परिधान किये और मौक्तिक वगैरः के अलङ्कारों से अलङ्कृत होकर साक्षात् देवी तुल्य कुमारिका शीबिका (पालखी)

उपसंहार—भव्य श्रोताओ ! इस अक्षय तृतीया के व्याख्यान में परमात्मा का पारणा—श्रेयाँस कुमार को अनुपम लाभ और कर्मराज का प्राबल्य प्रदर्शित किया है; इस पर अन्तरदृष्टि से परिशीलन कर अपना जीवन कृतार्थ करना—अशिवं क्षपतु सर्वेषाम्.



⊙ प्र श स्ति का ⊙

कृपालु करिवर अङ्क भू (१९८३) पौष तीज सितपक्ष ॥ पूर्ण किया भुजनगरमें । उपाख्यान हितलक्ष ॥ १ ॥
सुखसागर भगवान गुरु । त्रैलोक्य गुरु शिरताज ॥ आनन्दरत्नाकर भणे । रचना शिवगुण काज ॥ २ ॥

⊙ ग्यारहवाँ श्री अक्षयतृतीया का व्याख्यान सम्पूर्ण ⊙

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

में बैठकर अनेक सखियो के साथ उस विशाल स्वयंवर–मडप में दाखल हुई; तब एक सखी राज-कन्या के आगे होकर तत्र विराजित प्रत्येक राजपुत्रों के नाम–गौत्र–बल–वय–यश–ऋद्धि वगैरः का वर्णन करने लगी; राजतनया ने अन्य समस्त राजकुमारों का त्यागकर नागपुर के राजेन्द्र बीतशोक के पुत्र 'अशोककुमार' (चित्रसेन) के कण्ठ में वरमाला डाली, अन्य युवराजों ने प्रसन्न होकर इनके विवाह–महोत्सव में भाग लिया; पश्चात् भोजन–वस्त्र–ताम्बूलादि से आदर पाकर अपने २ स्थान पर वापिस चले गये

कितनेक दिन बीतने पर अशोककुमार भी अपने श्वसुर से शीख लेकर हाथी–घोड़े–रथ–पैदल–वस्त्र–आभूषणादियुक्त अपनी भार्या के साथ प्रस्थान कर नागपुर के समीप उद्यान में आपहुंचा, पिताजी ने पुरप्रवेश का महोत्सव किया, कुमार रोहिणी के साथ मोज–मज़ा करता हुवा सानन्द रहने लगा किसी एक मगल दिन के शुभ मुहूर्त्त में बीतशोक नृपेन्द्र अपने कुँवर को राज्यसिंहासन देकर प्रव्रज्या

अंगीकार कर गये. अशोक भूपेन्द्र के क्रमशः आठ पुत्र और चार पुत्रियँ हुईं, राजेन्द्र सुखपुरस्सर राज्यशासन चलाने लगा.

एक विचित्र घटना

एक वख्त राजेन्द्र रोहिणी रानी के साथ अपने सात मंजले महल पर बैठा हुवा लोकपाल नामक अपने कनिष्ट पुत्र को गोद में लेकर खेला रहा था, उस समय नगर में किसी एक स्त्री का वल्लभ पुत्र गुजर जाने से बिचारी वह विलापात करती हुई महल के समीप मार्ग से निकली; इस दृश्य को देखकर रानी ने पूछा—"हे महाराज ! यह कौन किस्म का नृत्य है ?" राजा ने कहा—"प्रिये ! अहंकार करना मुनासिब नहीं, सुख दुःख की छाया सब पर गुजरा करती है;" रानी बोली—"प्रभो ! मैं

अभिमान नहीं करती हूं; मगर मैंने ऐसा नृत्य कोई दिन नहीं देखा, इसही लिये आपश्री को पूछती हूँ !" तब महिपति ने कहा—"वल्लभे ! इसका प्यारा पुत्र मर गया ह, अतएव यह रुदन करती है !" पुनः राजरमणी ने पूछा—"स्वामिन् ! इसे रोना किसने सिखाया ?" रानी के अजब प्रश्न पर भूपति क्रोधाक्रान्त होकर कहने लगा—"अभिमानिनी ! देख !! मैं तुझे रोना शिखाता हूं; ऐसा कहकर रानी के उत्संग में रहे हुवे बच्चे को उठा कर राजा ने जमीन पर फैंका !!! उस समय वहाँ रहे हुवे तमाम लोग हाहाकार करने लगे, लेकिन रानी के हृदय में लेशमात्र भी दुःख न हुवा; इधर नगर के अधिष्ठाता देव ने नीचे गिरते हुए राजपुत्र को अधर झीलकर सिंहासन पर आरूढ किया; ऐसे चमत्कार से चमत्कृत होकर सर्वजन कहने लगे—"अहा ! महारानी रोहिणी का आदर्श जीवन धन्य है ! कि जो दुःख की वात तक भी नहीं जानती."

इस अवसर में श्री वासुपूज्य तीर्थंकर देव के 'रूप्यकुम्भ—सुवर्णकुम्भ' नाम के दो ज्ञानवन्त शिष्य पधारे, भूपति परिवार सहित वदन करने गया, गुरु महाराज ने धर्मदेशना दी, सुनकर सर्व

सभा हर्षित हुई; देशनानन्तर राजा ने विनम्र भावद्वारा पूछा—"हे भगवन् ! मेरी भार्या रोहिणी देवीने पूर्व ऐसी कौन तपस्या की थी कि जिससे दुःख की बात तक भी नहीं जानती ! साथही कौटुम्बिक सुखमें इसकी रत्नकूक्षिमें से आठ पुत्र और चार पुत्रियां अवतरित हुई. मेरा इस पर अतिशय स्नेह है; इन सर्व संयोग का कारणभूत इसका 'पूर्वभव वृत्तान्त' मुझ विनीत पर अनुग्रह कर प्रकाशित करने की कृपा करो ? अवनिपति की नम्र प्रार्थना स्वीकार कर गुरुदेव ने रोहिणी राजललना का पूर्वभव इस प्रकार बयान किया—

रोहिणी का पूर्वभव.

इसही नगर में 'धनमित्र' नामका एक सेठ रहता था, उसके 'धनमित्रा' संज्ञिका एक भार्या थी, उसके कुत्सित गर्भाशय से एक दुर्भागिनी, कुरूपा, 'दुर्गंधा' नामकी पुत्री उत्पन्न हुइ थी; कन्या की ऐसी अवदशा देखकर कोइ भी श्रीमान् इसके साथ विवाह नहीं करता था, पिताने अपना पिंड छुड़ाने के

लिये एक मृत्यु की टोंच पर पहुँचाया हुवा 'श्रीषेण' चोर को मुक्त कराकर अपनी कन्या का स्वामी बना दिया; किन्तु उपराम पाकर वह चोर उसे त्यागकर रात्री में ही पलायन कर गया; खबर मिलने पर सेठ दु:ख करने लगा और रुदन करती हुइ अपनी पुत्री को आश्वासन देकर कहने लगा—"हे पुत्रि ! तू विलाप मत कर, अपने घरके सरियन दरवज्जे पर बैठकर निरन्तर दान दे, जिससे दुष्ट कर्म विनष्ट हो जायगा, पिताश्री की आज्ञानुसार वह बालिका दान देने लगी— इस अवसर में किसी एक ज्ञानी गुरु महाराज का पदार्पण हुवा, सेठ ने कुटुम्ब सह भावपूर्वक वन्दन कर विनय सहित अपनी पुत्री की अवदशा का स्वरूप पूछा ? इस पर करुणासागर मुनिसत्तम ने दुर्गंधा का पूर्वभव इस मुजिब फरमाया—

❀ रोहिणी का जीव दुर्गंधा का पूर्वभव ❀

गिरिनार नगर के अन्दर 'पृथ्वीपाल' नामका राजा राज्य करता था; उसके 'सिद्धिमती नामकी एक रानी थी, अन्यदा राजा अपनी पत्नि को साथ लेकर वनक्रीडा करने को जा रहा था; उस समय

मासक्षमण के पारणे भिक्षा के लिये नगर के प्रति आते हुए 'सागर' नामक मुनिश्रेष्ठ को राजेन्द्र ने देखे. इनकी प्रभावशाली मुख मुद्रा को देख कर राजा हृदय में विचारने लगा-"ये गुणके निधान महात्मा तीर्थस्वरूप पुण्यक्षेत्र हैं; इनका दर्शनमात्र ही महापुण्य है" यथाहि—

साधूनां दर्शनं पुण्यं । तीर्थभूता हि साधवः ॥ तीर्थं फलति कालेन । सद्यः साधुसमागमः ॥ १ ॥

भावार्थ—साधुओं का दर्शन पुण्य है; कारण कि साधुजन तीर्थभूत हैं; तदपि इसमें अधिकता यह है कि-तीर्थ तो कालान्तर में फल प्रदान करता है और मुनिजनों का समागम शीघ्र ही फलितार्थ होता है.

भूपेन्द्र ने विचार किया कि-"इन निस्पृह मुनिपुङ्गव को दान देने से महा फल होगा" अतः अपनी प्रियतमा को कहा कि-"हे वरानने ! तू यहाँ से लौट जा और इन मुनीश्वर की आहार दान से भक्ति कर;" वनक्रिड़ा के आनन्द में क्षति होने से अन्तर में द्वेष और बाहर से प्रमुदित दशा का डौलकर

नृपति की आज्ञानुसार रानी वापिस फिरी, घर पर आकर द्वेषवशात् मुनिराज को कडुवे तुम्बे का आहार वहेरा दिया–मुनिमहात्मा ने उस आहार का पारणा किया, जिससे कालधर्म पाकर शुभ ध्यानद्वारा देवलोक में उत्पन्न हुवे.

इस हकिकत की खबर पडने से राजा ने तिरस्कार कर रानी को देश निकाला दे दिया "अत्युग्र-पुण्यपापानां इहैव फलमश्नुते" यानी अतिशय उग्र पुण्य और पापों का फल इसही भव में प्राप्त होता है इस नियम के अनुसार वह क्षुद्रा सातवें ही दिन कुष्टनी हुई. बहुत काल तक जैनधर्म की निन्दा करके आखिर छट्ठी नरक में प्राप्त हुई, वहाँ से निकलकर तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुई, तदन्तर प्रचुर दुःखागार सातवीं नरक में दाखल हुई, इस तरह वह पापात्मा सर्व नरको में भमी; पश्चात् क्रमशः सर्पणी–ऊटणी–शियालनी–कुकड़ी–सुव्वरणी–गृहकोकिला–जलौका–ऊंदरी–कागली–कुत्ती–बिलाडी–रासभी तथा गाय के भव में अवतरित हुई और मजकूर भवों में अग्नि–शस्त्रादि घातों से मृत्युवश हुई थी; अन्तिम गाय के भव में गुरु महाराज के उच्चरित नौकारमत्र की श्लाघा की थी, उसके प्रभाव से मनुष्यभव में अवतर

कर यह 'दुर्गंधा' नाम की तेरी पुत्रीपने उत्पन्न हुई—यह सब सुनकर दुर्गंधा ने जातिस्मरण ज्ञानद्वारा अपना पूर्वभव जाना, तब हस्तद्वय संयोज्यकर सविनय गुरुदेव से पूछा—"हे भगवन् ! इस दुःख से अब मेरा निस्तार कैसे हो सकेगा ?" दयालु मुनीश्वर ने फरमाया—"तू विधिपूर्वक 'रोहिणी तप' कर जिससे समस्त दुःख विध्वंस हो जांयगे." तप की विधि इस प्रकार है—

❀ रोहिणी तप विधि ❀

रोहिणी नक्षत्र के दिन उपवास करके श्री वासुपूज्य स्वामी के बिंब को अष्ट द्रव्यों से पूजने का विधान समझना—'श्रीवासुपूज्य अर्हते नमः' इस पद का दो हजार जाप करना, काउसग्ग—स्वस्तिक—प्रदक्षिणा और खमासमणे अरिहन्त पद के समान बारह २ करना चाहिये; यदि पौषध किया हो तो सर्व द्रव्यक्रियाएँ पारणे के दिन करना गीतार्थसम्मत है; इस मुज़िब सात वर्ष और सात महिने पर्यन्त इस व्रत का सामाराधन करना चाहिये; प्रान्ते यथाशक्ति उद्यापन करना विधिमार्ग है.

इस कदर आराधन करने से 'सुगंध राजावत्' सर्व दुःख विलय हो जांयगे और सुखश्रेणि प्राप्त होगी—दुर्गंधा ने सविनय पूछा—"हे भगवन्त ! उन पुण्यशाली सुगन्ध राजा का वृत्तान्त कृपाकर मुझे श्रवण कराओ ! कृपासिंधु गुरु महाराज ने इस तौर पर बयान किया—

● सुगंध राजा का वृत्तान्त ❀

सिंहपुर नगर के अन्दर सिंहसेन राजा राज्य करता था, उसकी कनकप्रभा प्रिया के उदर से 'दुर्गंध' नाम का पुत्र अवतरित हुवा था, क्रमशः यौवनअवस्था मे प्राप्त हुवा; लेकिन किसी के हृदय में रुचिकर न था—एकदा श्री पद्मप्रभु तीर्थंकर वहाँ पधारे, राजा सपरिवार वन्दन करने गया, देशनानन्तर धरणिधर ने अपने पुत्र का कर्मविपाक भगवन्त को सविनय पूछा; तब सर्वज्ञ प्रभु ने इस कदर आख्यान किया—

"अमुक देशान्तरगत नागोर नाम का एक नगर है, उससे बारह कोश दूर एक नीलगिरि पर्वत है,

उस पर रही हुइ एक शीला के ऊपर बैठकर एक मुनि मासक्षमणादि तपस्या करता था, उसके प्रभाव से उस पहाड़ पर शिकारियों की शिकार निष्फल जाती थी; अतः एक 'लुब्धक' नामक पारधी मुनि पर द्वेष करने लगा; एक वख्त वह तपस्वी ऋषि पारणे के लिये गांव में गया था और पीछे से उस लुब्धक ने उसकी आसनभूत शिला के नीचे अग्नि जलाकर उसे खूब तप्त बनादी, वह मुनि पारणा करके उस शिला पर बैठा, अतिशय ताप लगने के हेतु वह ऋषी शुद्ध ध्यानद्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष नगर को सिधाया; ऋषीघात करने से वह लुब्धक शिकारी कुष्टरोगी हुवा; महापुरुषों ने ऋषिहत्या का दारुण फल इस तरह फरमान किया है—

ऋषिहत्याकरो जीवो । दुःखं भुंजति भूतले ॥ संसारसागरे घोरे । पीड्यते च पुनः पुनः ॥ १ ॥

भावार्थ—ऋषिहत्या (मुनिहत्या) करने वाला जीव भूमंडल पर दुःख भोगता है और भवान्तर में घोर संसार सागर में बारम्बार पिड़ाता है.

पश्चात् वह लुब्धक पचत्व को प्राप्त कर सातवीं नरक में गया, वहाँ से नीकलकर मच्छ अवतार पाकर फिर गोनालिया हुवा; मगर दरिद्री हुवा, किसी वणिक ने उसे 'नवकार मन्त्र' शिखाया; तदनन्तर किसी संयोगवशात् वह दावानल में जलकर मर गया, मरते समय नमस्कार का स्मरण करने से हे राजन् राजकुल में अवतरकर 'दुर्गंध' नामक तेरे पुत्रपने उत्पन्न हुवा. अपना पूर्वभव जानकर राजपुत्र को जाति-स्मृति ज्ञान उपलब्ध हुवा; तब अति दीनता से प्रभु को पूछा—हे भगवन्! मैं सुगंधी कैसे बनु? इसका उपाय दयाकर मुझे बताओ ?" तीर्थंकर देव ने फरमाया—"तू विधिवत् रोहिणी तप कर और प्रान्ते यथाशक्ति उजमना करना, प्रभु के कथनानुसार सादर रोहिणी तप किया; जिससे दुष्ट दुर्गन्ध नाश होगया और तब से 'सुगन्धकुमार' नाम से नामांकित हुवा.



सुगंधकुमार का आख्यान सुनकर दुर्गंधा ने विधिसहित रोहिणी तप का आराधन किया जिससे 'सुगंधा' बन गई, वहाँ से कालकर देवी हुई, पश्चात् चम्पा नगरी में श्रीवासुपूज्य स्वामी के पुत्र 'मघवा'

महिपति के घर पर पुत्रीरूप जन्म लेकर यह 'रोहिणी' तेरी रानी हुई; पूर्वभव कृत तपस्या के प्रभाव से यह जन्म से ही दुःखवार्ता को नहीं जानती है—हे अशोक धरणिपते ! अब तेरा और तेरी रानी का स्नेह-संयोग सलक्ष श्रवण कर—

❀ राजा-रानी का स्नेहसंयोग ❀

अन्यदा सिंहसेन राजा ने अपने पुत्र सुगंधकुमार को राज्यशासन देकर भवतापहारिणी प्रव्रज्या अंगीकार करली, सुगंध राजा भी जिनशासन का आराधन करने लगा, प्रान्ते समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त कर सुरलोक में पहुंचा; वहाँ से च्यवकर इसही जम्बूद्वीपान्तरगत महाविदेह में पुष्कलावती विजय के अन्दर पुण्डरीकिणी नगरी में विमलकीर्ति भूपेन्द्र की धर्मपत्नि सुभद्रा महाराणी की रत्नकुक्षि में प्राप्त हुवा, माता ने चौदह महास्वप्न देखे और काल के परिपाक होने पर एक शुभ लक्षणयुक्त पुत्ररत्न को जन्म दिया, पिताश्री ने 'अर्ककीर्ति' नाम कायम किया, क्रमशः चक्रवर्ती पद पर अलंकृत हुवा; कितनेक

कालपर्यन्त राज्यऋद्धियों के सुखद अनुभवों को अनुभवकर जितशत्रु मुनि के पास दीक्षा अंगीकार करली, वहॉ पर निर्मल तप का आराधन कर बारवे देवलोक का देवेन्द्र हुवा. वहॉ से च्यवकर हे राजन् ! तू अशोक नृपेन्द्र होकर रोहिणी का भर्तार हुवा; तुम दोनों ने पहिले रोहिणी तप का समाधान किया था; अतः परस्पर स्नेहग्रथी से ग्रथित हुवे. अब तुम अपने पुत्र–पुत्रियो का सम्बन्ध सुनो—

❀ राजा और पुत्र–पुत्रियों का सम्बन्ध ❀

मथुरा नगरी में अग्निशर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था. उसके सात पुत्र थे; लेकिन वे सब दरिद्री थे, एक समय पाटलीपुर नगर के अन्दर वे सातो भाई भिक्षा के लिये भटक रहे थे, उस समय एक बगीचे मे कदर्पावतार किसी राजकुमार को क्रीडा करते हुवे देखकर उनमें से शिवशर्मा नाम की एक व्यक्ति बोली—"अहो बन्धुओ ! देखो ! विधि ने कितना फर्क डाला है ? यह युवराज मनोवॉच्छित सुख भोगता है और अपन घर २ भिक्षा के लिये भटकते हैं !" शेष छः भाईयों में से एक बोला—"हे भ्रात ! इसमें किसका दोष ? पूर्व भव में अपनोने पुण्य उपार्जन नहीं किया, इससे अपनी यह दु:खद

रोहिणीतप पंचमीतप । गुरुआ ए तप जाणी ॥ दुखित होय करी सुखी होय । बोले केवलनाणी ॥ १ ॥

उपसंहार–मुमुक्षो ! इस पवित्र रोहिणी पर्व में राज कन्या रोहिणी और उसके कुटुम्ब का काफी परिचय दिया गया है और साथ ही साथ पुण्य पाप का फलस्वरूप सुख दुःख की छाया का प्रकाश अच्छी तरह प्रकाशित किया गया है; विशेपता में देहाध्यासी तथा त्यागियों की जीवन दशा भी अव्यक्त-रूप व्यक्त की गई है; इस पर दीर्घदर्शी की तरह अन्तर दृष्टि से पर्यालोचन कर अपना जीवन फलितार्थ करना–श्रीरस्तु सर्वेपाम्.

प्र श स्ति का.

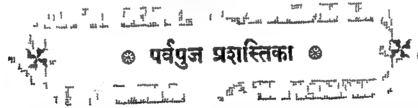
अनल सिद्धि गो शर्वरी (१९८३) माघ शुक्ल अभिराम ॥ सुखकर वसन्त पंचमी । पूर्ण शान्ति विश्राम ॥ १ ॥

कच्छदेश अजार मे । द्वादशवाँ व्याख्यान ॥ पूर्ण किया आनन्द से । रोहिणी आख्यान ॥ २ ॥
सुखसागर भगवान् गुरु । त्रैलोक्य गुरु आधार ॥ आनन्दरत्नाकर वदे । सर्वेषां श्रीकार ॥ ३ ॥



⊛ बारहवाँ श्रीरोहिणी व्याख्यान सम्पूर्ण ⊛

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्ति.



⊛ पर्वपुज प्रशस्तिका ⊛

पावन खरतर गच्छमें । श्रीजिनभक्ति सुरिन्द ॥ सप्तपष्ठी पटपर हुवे । शोभे महा मुणिन्द ॥ १ ॥
प्रीत्यब्धि चारित्ररत्न । महासन्त गुणवन्त ॥ अमृतधर्म गणिवर हुवे । क्षमावन्त यशवन्त ॥ २ ॥

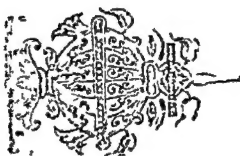
क्षमाकल्याण पाठक गुरु । ज्ञानरत्न भंडार ॥ धर्मानन्द मुनिसत्तम । राजऋद्धि हितकार ॥ ३ ॥
संघाटक नायक हुवे । सुखसागर गुरुराज ॥ ज्ञान चरण अति निर्मला । वंद्य पूज्य शिरताज ॥ ४ ॥
भगवान गुरु हम सुखकर । छगन गुरु श्रीकार ॥ कृपासिंधु त्रैलोक्य गुरु । भव्यजीव आधार ॥ ५ ॥
चरणकमल सेवक सदा । वीरपुत्र उपनाम ॥ आनन्द सागरने रचा । द्वादश पर्वाख्यान ॥ ६ ॥
गुण हस्ति ग्रह चन्द्रमा (१९८३) फाल्गुन उज्ज्वल पक्ष ॥ तीर्थराज भद्रेश्वरे । पंचमी यात्रा दक्ष ॥ ७ ॥
पूर्ण किया यह ग्रन्थ हम । विध विध विषय रसाल ॥ वक्ता श्रोताको सदा । होजो मंगल माल ॥ ८ ॥



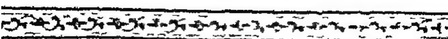
VEER PUTRA ANANDSAGAR.
BHADRESAR (Cutch)











श्री द्वादश पर्व व्याख्यान समाप्तः

☞ ग्रंथ मिलने का पता—

जैन प्रिंटिंग प्रेस,

मु. कोटा (राजपूताना)